अग्निशिखा
अखिल भारतीय पत्रिका
मार्च २०२२

# साधना के लिए प्रवेशिका

## भाग २

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

# विषय-सूची

## 'साधना के लिए प्रवेशिका' (भाग २)

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)


| | |
|---|---|
| प्रार्थना (४ सितम्बर १९१४) | ३ |
| सतत आन्तरिक स्मरण | ४ |
| स्वयं को माँ भगवती के हाथों में सौंप दो | ६ |
| भगवद्गीता में दर्शाया महानतम मार्ग | ८ |
| रूपान्तरकारी तीन आन्तरिक गतियाँ | १२ |
| चैत्य के प्रति खुलना | १४ |
| दैनन्दिन अभ्यास में पथ-प्रदर्शन | २० |
| एक क्षण के लिए भी यह न भूलो | २४ |
| आरम्भिक बिन्दु | २६ |
| हे प्रभो, मुझे स्वयं मुझसे मुक्त कर | २७ |
| आध्यात्मिक पुनर्जन्म—कर्मों से मुक्ति | २८ |
| मन को नीरव कैसे किया जाये | २९ |
| भागवत एकत्व प्राप्त करना | ३२ |
| परिशिष्ट : | |
| एक साधक के द्वारा श्रीमाँ की उपस्थिति की एक अनुभूति | ३४ |


## पुरोधा


| | | |
|---|---|---|
| दैनन्दिनी | | ४३ |
| 'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' गुरु-शिष्य सम्बन्ध | नवजातजी | ४६ |
| आया कहाँ से यह सब? | स्व. रवीन्द्रजी | ५० |
| तुझे हर मुश्किल से पार लगा दूँगा | वन्दना | ५३ |
| वैदिक संस्कृति की उदारता | नरेन्द्र विद्यावाचस्पति | ५६ |
| फ़ॉर्म ४ | | (आवरण ३) |

# प्रार्थना

**४ सितम्बर १९१४**

पृथ्वी पर अँधेरा उतर आया है, घना, उग्र और विजयी... भौतिक जगत् में सब कुछ दुःख, आतंक, विनाश है और ऐसा लगता है कि तेरे प्रेम के प्रकाश की भव्यता को विलाप के परदे ने अस्पष्ट कर दिया है...।

हे मधुर माँ, मैं असीम प्रेम और सभी वस्तुओं के स्वामी के प्रति तीव्र याचना के साथ तेरे अन्दर विलीन हो जाती हूँ ताकि 'वह' हमें मार्ग दिखलाये, ताकि 'वह' हमारे लिए अपने कार्य की रूपरेखा बना दे जिस पर हम बेखटके चल सकें।

समय दबाव डाल रहा है : हे प्रभो, दिव्य शक्तियों को सन्तप्त पृथ्वी की सहायता के लिए आना चाहिये।

हे माँ, मधुर माँ, तू अपने सभी बच्चों को अपने विशाल वक्ष से चिपका लेती है और तेरा प्रेम सबको समान रूप से आलिंगन में लेता है।

मैं तेरे प्रेम की पावन अग्नि बन गयी हूँ। हे प्रभो, नीरव 'अचिन्त्य' 'एकमेव', इस प्रेम की वेदी के यज्ञ को स्वीकार कर ताकि तेरा राज्य आये, तेरा प्रकाश अन्धकार और मृत्यु पर विजयी हो।

अपनी शक्ति को अभिव्यक्त कर। दिन प्रतिदिन, प्रत्येक घण्टे हम तुझ से अनुनय करते हैं : "हे प्रभो, अपनी शक्ति को प्रकट कर!"

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १, पृ. १३८

# सतत आन्तरिक स्मरण

... इस योग का अभ्यास इस बात की माँग करता है कि हम एकमात्र केन्द्रीय मुक्तिदायक ज्ञान का आन्तरिक रूप से सतत स्मरण करते रहें। उस ज्ञान को निरन्तर सक्रिय रूप में कर्मों में उँडेलने से इस स्मरण को तीव्र बनाने में सहायता मिलती है। सब में एक ही 'आत्मा' है, एकमेव प्रभु ही सब कुछ हैं; सब उन्हीं प्रभु में हैं, सब प्रभु हैं, उनके सिवाय इस दुनिया में और कुछ नहीं है—यह विचार या यह श्रद्धा तब तक कर्म करने वाले की पृष्ठभूमि में पूरी तरह से बसी रहती है जब तक कि यह चीज़ उसकी चेतना का सारतत्त्व नहीं बन जाती। इस तरह के स्मरण को, यानी, अपने-आपको क्रियाशील बनाने वाले इस प्रकार के ध्यान को अन्त में उस 'तत्' का एक गभीर और अविच्छिन्न अन्तर्दर्शन और एक जीवन्त तथा सर्वालिंगनकारी चेतना बन जाना चाहिये जिसका हम इतने शक्तिशाली रूप में स्मरण करते अथवा इतने सतत रूप से जिस पर ध्यान लगाते हैं। क्योंकि यह हमें बाध्य करता है कि हम प्रतिक्षण समस्त सत्ता, संकल्प और क्रिया के उद्गम के प्रति कृतज्ञ रहें, तब तुरन्त हमें उस 'तत्' का वह दर्शन प्राप्त होता है जो सभी को अपने अन्दर बसाये हुए है, सभी को सहारा देने वाला उनका कर्ता-धर्ता है, और जो सभी रूपों तथा आकारों का अतिक्रमण भी कर लेता है। यह मार्ग अपने लक्ष्य पर तब तक नहीं पहुँच सकता जब तक यह सभी जगह एक वैश्व आत्मा की कृतियों को स्पष्ट तथा सजीव रूप में, यानी भौतिक रूप में देखने के समान ही प्रत्यक्ष तौर पर नहीं देख लेता। अपने शिखर पर यह मार्ग उस अवस्था तक ऊँचा उठ जाता है जहाँ हम नित्य-निरन्तर अतिमानसिक तथा परात्पर प्रभु की उपस्थिति में ही रहते-सहते, सोचते-विचारते और संकल्प तथा कर्म करते हैं। जो कुछ हम देखते और सुनते हैं, जो कुछ भी हम छूते और अनुभव करते हैं और जिस किसी भी चीज़ के प्रति हम सचेतन होते हैं उस सबको हमें उसी 'तत्' के रूप में जानना और अनुभव करना होगा जिसकी हम पूजा और सेवा करते हैं, सभी को प्रभु की प्रतिमा में बदलना होगा, सभी को उसी प्रभु का निवासधाम अनुभव करना होगा तथा स्वयं को शाश्वत सर्वव्यापकता से घिरा हुआ महसूस करना होगा।

CWSA खण्ड २३, पृ. ११२-१३ **श्रीअरविन्द**

श्रीमाँ की तूलिका द्वारा रेखांकित श्रीअरविन्द

... श्रीअरविन्द करुणा की साकार अभिव्यक्ति थे... निस्सन्देह इसे उनकी आँखों में देखा जा सकता था, उनकी आँखें 'करुणा' से भरी हुई थीं।

**श्रीमाँ**

७ दिसम्बर १९६६ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

# स्वयं को माँ भगवती के हाथों में सौंप दो

*"एक आद्या परात्पर शक्ति, माता, सभी जगतों के परे खड़ी हैं और अपनी शाश्वत चेतना में परात्पर भगवान् को धारण किये रहती हैं।*

**श्रीअरविन्द**

*इसी तरह क्या यह कहा जा सकता है कि परात्पर भगवान् माँ को अपनी शाश्वत चेतना में वहन करते हैं?*

इस विषय में कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

वे सारतत्त्व में और अभिव्यक्ति में **एक** हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १६, पृ. ४३८

एकमेव आद्या परात्पर शक्ति के रूप में माता सब लोकों के ऊपर स्थित हैं और अपनी शाश्वत चेतना में परम पुरुष को धारण करती हैं। वे अकेली ही अपने अन्दर चरम शक्ति और ऐसी उपस्थिति को लिये रहती हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे ही उन सत्यों को धारण करती या पुकारती हैं जिन्हें इस जगत् में प्रकट होना है। वे उन सत्यों को, उस रहस्यमय स्थान से, जहाँ वे छिपे हुए थे, उतार कर अपनी अनन्त चेतना की ज्योति में नीचे लाती हैं और उन्हें अपने सर्वशक्तिमान् सामर्थ्य के द्वारा शक्ति का रूप तथा असीम जीवन और विश्व में शरीर प्रदान करती हैं। परम पुरुष उन माता के अन्दर सनातन काल के लिए अनन्त सच्चिदानन्द के रूप में अभिव्यक्त हैं और उन्हीं के द्वारा लोकों में वे ईश्वर-शक्ति के एक और द्विविध रूप में तथा पुरुष-प्रकृति के द्वैत तत्त्व में अभिव्यक्त होते हैं। परम पुरुष माता के द्वारा अनेक लोकों और चेतना की भूमिकाओं में तथा देवता और उनकी शक्तियों में मूर्तिमान् हुए हैं। उन्हीं के कारण वे जाने और अजाने लोकों में जो कुछ है उन सब रूपों में साकार हुए हैं।...

माता केवल ऊपर रह कर ही सब पर शासन नहीं करतीं, वे निचले त्रिविध लोकों में भी उतर आती हैं। निर्वैयक्तिक रूप से सभी चीज़ें, यहाँ तक कि अज्ञान की गतियाँ भी—छिपी हुई शक्ति के रूप में स्वयं वे ही हैं। वे उन्हीं के घटे हुए तत्त्व में उनकी प्राकृतिक शक्ति और प्राकृतिक शरीर

हैं और इनका अस्तित्व इसलिए है कि अनन्त की सम्भावनाओं में से कुछ को मूर्त रूप देने के लिए परम पुरुष का रहस्यमय आदेश हुआ था, उस आदेश को मान कर माता ने महान् बलिदान देना स्वीकार किया और अन्तरात्मा और अज्ञान के मुखौटों को पहनना स्वीकारा। व्यक्तिगत रूप से भी माता ने इस जगत् के अन्धकार में उतरना स्वीकार किया ताकि वे उसे ज्योति की ओर ले जा सकें; वे मिथ्यात्व और भ्रान्ति में उतरीं ताकि उन्हें सत्य में बदला जा सके; इस मृत्यु में उतरीं ताकि उसे दिव्य जीवन में बदल सकें; इस सांसारिक दुःख में और उसके दुःसाध्य कष्ट और पीड़ा में उतरीं ताकि अपने परम आनन्द की तीव्रता से इनका रूपान्तर करके इनका अन्त कर सकें। उन्होंने अपने बच्चों के लिए गहरे और महान् प्रेम के कारण अज्ञान का लबादा पहनना स्वीकार किया, जन्म के प्रवेश-द्वार में घुसना स्वीकारा जो वास्तव में मृत्यु ही है। अन्धकार और मिथ्यात्व की शक्तियों के आक्रमणों और कष्ट देने वाले प्रभावों को सहने की, सृष्टि के दुःख-दर्द और यातनाओं को स्वीकारने की कृपा की क्योंकि उन्हें लगा कि केवल इसी उपाय से जगत् को ज्योति, आह्लाद, सत्य और अनन्त जीवन की ओर उठाया जा सकता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १४-१५, १७ **श्रीअरविन्द**

अगर तुम यह रूपान्तर चाहते हो तो अपने-आपको बिना मीन-मेख या प्रतिरोध के माता और उनकी शक्तियों के हाथों में सौंप दो। तुम्हारे अन्दर तीन चीज़ें होनी चाहियें—सचेतनता, नम्यता और बिना शर्त समर्पण। तुम्हें अपने मन, अन्तरात्मा, हृदय, प्राण और शरीर के कोषाणुओं तक में माता का, उनकी शक्ति का, उनकी क्रिया के बारे में सचेतन ज्ञान होना चाहिये। यद्यपि वे तुम्हारी अज्ञानावस्था में, अचेतन भागों और क्षणों में भी काम कर सकती और करती हैं लेकिन यह काम वैसा नहीं होता जैसा कि तब होता है जब तुम उनके साथ जीवित-जाग्रत् सम्पर्क में होते हो। तुम्हारी पूरी प्रकृति उनके स्पर्श के प्रति नमनीय होनी चाहिये, उसे अपने-आपसे सन्तुष्ट अज्ञानी मन की तरह, जो बोध और परिवर्तन का शत्रु है, प्रश्न, तर्क-कुतर्क और शंकाएँ नहीं करनी चाहियें। उसे हठीला बन कर हर भागवत प्रभाव का अदम्य कामना और अशुभेच्छा के साथ विरोध करने वाले मानव प्राण

की तरह अपनी गतिविधि के लिए दुराग्रह नहीं करना चाहिये। उसे मनुष्य की उस भौतिक चेतना की तरह निर्बल, जड़ और तमोग्रस्त नहीं होना चाहिये जो अपनी क्षुद्रता और अन्धकार से मिलने वाले सुख से चिपट कर, अपनी निर्जीव दिनचर्या, शुष्क प्रमाद या जड़ तन्द्रा में विघ्न डालने वाले हर स्पर्श के विरुद्ध चिल्ला पड़ती है। तुम्हारी अन्दर और बाहर की सत्ता का बिना शर्त समर्पण तुम्हारी प्रकृति के सभी भागों में यह नमनीयता ले आयेगा। ऊपर से नीचे प्रवाहित होते हुए प्रज्ञा और प्रकाश, शक्ति, सामञ्जस्य और सौन्दर्य तथा पूर्णता के प्रति हमेशा खुले रहने से तुम्हारे अन्दर हर जगह चेतना जाग उठेगी। यहाँ तक कि शरीर भी सचेतन हो जायेगा और उसकी चेतना पहले की तरह अतिमानसिक, अतिचेतन शक्ति से छिपी न रह कर उसके साथ एक हो जायेगी, उसकी सारी शक्तियों को ऊपर, नीचे और चारों ओर फैलती हुई अनुभव करेगी और वह परम प्रेम और आनन्द की अनुभूति से पुलकित हो उठेगा।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २४-२५ **श्रीअरविन्द**

# भगवद्गीता में दर्शाया महानतम मार्ग

मनुष्य की अन्तरात्मा के देवत्व श्रीकृष्ण हमें *गीता* में द्रुततम, विशालतम तथा महानतम मार्ग दर्शाते हुए कहते हैं—अपना मन, अपनी बुद्धि और सम्पूर्ण समझ को मेरे ऊपर छोड़ दो: मैं तुम्हें उठा लूँगा और भागवत प्रेम, संकल्प तथा ज्ञान के दैवी प्रकाश से सराबोर कर दूँगा, ये चीज़ें मेरे ही अन्दर से प्रवाहित होती हैं। इसमें सन्देह न करो कि इस मर्त्य जीवन के ऊपर तुम मेरे अन्दर ही निवास करोगे। सीमित पार्थिव प्रकृति की यह शृंखला उस अमर आत्मा को नहीं बाँध सकती जो उत्साह, शक्ति तथा शाश्वत प्रेम, संकल्प और ज्ञान की शक्ति तथा उसके प्रकाश में उल्लसित और आह्लादित रहती है।

निस्सन्देह, इस मार्ग में भी बहुत सी कठिनाइयाँ आती हैं, क्योंकि निम्न प्रकृति अपनी उग्र और नीरस, नीचे खींचने वाली गुरुत्वाकर्षण शक्ति के साथ बँधी हुई है जो आरोहण की गति का विरोध करती, उससे लड़ती है और परमानन्द तथा आरोहण के हर्षोन्माद के पर काट देती है। महान्

क्षणों या शान्त तथा भव्य कालों में जब तुम भागवत चेतना को पा लेते हो, उसे तुम हमेशा के लिए नहीं रख सकते या अपनी इच्छानुसार उसे जब मर्ज़ी वापस नहीं बुला सकते; कई बार भगवान् पर अपनी चेतना को दृढ़ जमाये रखने में तुम अक्षमता का अनुभव करते हो, 'प्रकाश' के राज्य से व्यक्ति को देशनिकाला दे दिया जाता है और उसे बहुत सी रातें घोर अन्धकार में बितानी पड़ती हैं, विद्रोह, शंका या असफलता के कई पलों या घण्टों का उसे सामना करना पड़ता है। लेकिन फिर भी, ऐक्य के अभ्यास तथा अनुभूति के सतत दोहराव द्वारा वह उच्चतम आत्मा मानव सत्ता में विकसित होते-होते उसकी प्रकृति पर हमेशा के लिए पूरी तरह छा जाती है।

हमारा मन भी हमेशा बहिर्मुख रहता, बाहरी चीज़ों में ही फँसा रहता है, तो क्या उसके इतने शक्तिशाली और दुराग्रही होने की वजह से ही व्यक्ति को इतनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है? तब तो मार्ग सरल है, व्यक्ति को सभी क्रियाएँ कर्म के देवता को समर्पित कर देनी चाहियें ताकि मन की प्रत्येक बहिर्मुख गति सत्ता के आन्तरिक आध्यात्मिक सत्य के सदृश बन जाये और जिसे बहिर्मुख होते हुए भी शाश्वत सत्य की क्रिया में उँडेला और 'उत्स' के साथ जोड़ा जा सके। तब सामान्य मनुष्य के अन्दर पुरुषोत्तम की उपस्थिति तब तक घर करती रहेगी जब तक वह उससे लबालब भर नहीं जायेगा और देवत्व तथा आत्मा में विकसित नहीं हो जायेगा; तब समस्त जीवन प्रभु का सतत स्मरण बन जायेगा, पूर्णता का विकास होगा और मानव अन्तरात्मा परम 'अस्तित्व' के साथ एक हो जायेगी।

लेकिन यह भी हो सकता है कि प्रभु का यह सतत स्मरण और अपने कर्म का उन्हें समर्पण भी व्यक्ति को अपने सीमित मन के बूते से बाहर लगे, क्योंकि अपने भुलक्कड़पन में वह बाहरी क्रिया तथा इच्छाओं में ही फँसा रहे और अन्दर झाँकना और आत्मा की भागवत वेदी पर अपना पल-पल चढ़ाना भूल जाये। तब तरीक़ा है कि वह अपनी निम्न प्रकृति की क्रियाओं को नियन्त्रण में रखते हुए, कर्म के फल की अपेक्षा किये बिना अपना कर्तव्य-कर्म करता रहे। उसे अपने कर्म के सभी फलों को उस 'शक्ति' को न्योछावर कर देना होगा जो उसके कार्यों को निर्देशित करती है, और कर्म उसे ऐसे करना होगा मानों उसी शक्ति ने उसे वह सौंपा है। इस तरह करते-करते कठिनाई धीरे-धीरे कम होते-होते आसानी से ग़ायब

हो जाती है; मन प्रभु का स्मरण करने और स्वयं को भागवत चेतना में खो देने के लिए बन्धनरहित हो जाता है। यहाँ *गीता* फल की कामना न करके केवल कर्म करने के इस योग की क्षमताओं का ऊर्ध्वगामी मापदण्ड तथा श्रेष्ठतम फलक प्रदान करती है। किसी क्रिया का अभ्यास, किसी प्रयास तथा अनुभूति का बार-बार दोहराव बहुत महान् तथा शक्तिशाली चीज़ है, लेकिन इससे अधिक अच्छा है ज्ञान तथा चीज़ों के परे के 'सत्य' के प्रति विचारों का ज्योतिर्मय झुकाव। व्यक्ति 'सत्य' पर पूर्ण नीरवता-भरा ध्यान लगा कर इस विचार-ज्ञान को भी श्रेष्ठता तक पहुँचा सकता है ताकि अन्ततः चेतना सत्य में निवास कर हमेशा उसके साथ एक बनी रहे। लेकिन फिर भी इससे अधिक शक्तिशाली है, अपने सभी कर्मों के फल को त्याग देना, क्योंकि यह त्याग अशान्ति के सभी कारणों को तुरन्त नष्ट कर देता है और परिणाम-स्वरूप एक आन्तरिक अचञ्चलता तथा शान्ति को ले आता तथा स्थायी बना देता है; अचञ्चलता तथा शान्ति ही वह नींव हैं जिस पर सब कुछ पूर्ण और सुरक्षित बन जाता है क्योंकि शान्त आत्मा उसे अपनी पकड़ में ले लेती है। तब चेतना सुखी रह सकती है, प्रसन्नतापूर्वक स्वयं को प्रभु पर तल्लीन रख कर, अचञ्चलता के साथ पूर्णता तक उठ सकती है। तब ज्ञान, संकल्प तथा भक्ति भी ठोस अचञ्चलता की पक्की ज़मीन से निकल कर, 'शाश्वतता' के आकाश तक अपने शिखरों को उठा ले जा सकते हैं।

CWSA खण्ड १९, पृ. ४०२-०३ **श्रीअरविन्द**

## मिथ्या आत्मा तथा सच्ची आत्मा

... सामने की तरफ़ तो मनुष्य में प्राणमय भाव का हृदय है जो पशु के हृदय-जैसा है, हालाँकि है विविध रूप से विकसित; उसके मनोभाव अहंकारमय आवेशों, अन्धे और सहज राग-अनुराग और जीवन-आवेगों के उस समस्त खेल के द्वारा शासित होते हैं जो दोषों तथा विकारों से भरे हुए हैं और बहुधा उसके निकृष्ट पतन का कारण बनते हैं—वह हृदय निस्तेज तथा भ्रष्ट जीवन-शक्ति की वासनाओं, कामनाओं, क्रोधों, तीव्र या भयानक माँगों या तुच्छ लोभों और निम्न क्षुद्रताओं से आक्रान्त और आबद्ध रहता

है और साथ ही, आवेगों के अधीन होने के कारण हीन तथा दरिद्र अवस्था में गिरा होता है। भावनामय हृदय और संवेदनशील प्यासे प्राण का वह मिश्रण मनुष्य में कामना की मिथ्या आत्मा को जन्म देता है। कामना की यह आत्मा ही वह अनगढ़ तथा भयानक तत्त्व है जिस पर तर्कबुद्धि, ठीक ही, अविश्वास करती तथा उस पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता अनुभव करती है, हालाँकि जिस वास्तविक नियन्त्रण अथवा यह कहें कि निग्रह को यह हमारी अपरिपक्व और आग्रहशील प्राणिक प्रकृति पर लागू करने में सफल होती है वह हमेशा बहुत अनिश्चित और वञ्चनात्मक ही रहता है। लेकिन मनुष्य की सच्ची आत्मा इस भावनामय हृदय में नहीं रहती; वह होती है, प्रकृति की किसी ज्योतिर्मयी गुहा में छिपे हुए एक सच्चे और अदृश्य हृदय में : वहाँ दिव्य ज्योति के विशेष अन्तःसरण की छाया में हमारी आत्मा, एक अचञ्चल अन्तरतम सत्ता विराजमान है जिसका ज्ञान विरले ही लोगों को है; क्योंकि भले सभी में आत्मा है, लेकिन बहुत कम ही लोग अपनी सच्ची आत्मा के बारे में सचेतन होते और उसकी प्रत्यक्ष प्रेरणा को अनुभव करते हैं। हमारे अन्दर बसती है भगवान् की वह नन्हीं चिनगारी जो हमारी प्रकृति की इस अन्धकारमयी राशि को धारण करती है और इसी के चारों ओर हमारी चैत्य सत्ता, यानी, हमारी गठित आत्मा या हमारे अन्दर का वास्तविक मनुष्य वर्धित होता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य के अन्दर का वह चैत्य पुरुष विकसित होता है तथा हृदय की गतियाँ इसकी भविष्यवाणियों तथा प्रेरणाओं को प्रतिबिम्बित करने लगती हैं, त्यों-त्यों मनुष्य अपनी आत्मा के प्रति उत्तरोत्तर सचेतन होने लगता है, अब वह केवल ऊँची श्रेणी का पशु नहीं रहता, वह अपने अन्तर्यामी परमेश्वर की झाँकियों के प्रति जाग्रत् होकर, गभीरतर जीवन तथा चेतना को अपने अन्दर ग्रहण करने लगता है और भागवत चीज़ों के प्रति उसे एक तरह का लगाव हो जाता है।

CWSA खण्ड २३, पृ. १५० **श्रीअरविन्द**

---

***चिन्तन की पूर्ण नीरवता में सब कुछ आनन्द में विस्तार पाता है और उस नीरवता के पूर्ण मौन में भगवान् अपने प्रकाश की चमकदार महिमा में प्रकट होते हैं।*** ***श्रीमाँ***

# रूपान्तरकारी तीन आन्तरिक गतियाँ

तीन शर्तें हैं जो इस केन्द्रीय आन्तरिक क्रान्ति तथा नवीन निर्माण की सफलता के लिए अनिवार्य हैं। इनमें से एक भी अपने-आपमें पूर्ण रूप से पर्याप्त नहीं है, किन्तु इनकी संयुक्त त्रिगुण शक्ति से जीवन को ऊँचा उठाया जा सकता है, उसका रूपान्तर किया जा सकता है और सम्पूर्ण रूप से किया जा सकता है। सर्वप्रथम, जीवन, अपने वर्तमान रूप में, कामना की एक हलचल ही है और इसने हमारे अन्दर अपने केन्द्र के तौर पर एक कामनामय पुरुष की रचना कर ली है। यह कामना-पुरुष जीवन की सभी क्रियाओं को अपने द्वारा जाँचता है और उनमें अपने अज्ञानयुक्त, अर्ध-प्रकाशित एवं पराजित प्रयत्न की व्याकुल चीख-पुकार और दुःख-दर्द को डाल देता है। दिव्य जीवन प्राप्त करने के लिए कामना को मिटाना होगा और उसके स्थान पर एक शुद्धतर तथा स्थिरतर प्रेरक शक्ति की प्रतिष्ठा करनी होगी, कामना की पीड़ित आत्मा को विनष्ट कर उसके स्थान पर अपने अन्दर के प्रच्छन्न सच्चे प्राणमय पुरुष की प्रशान्ति, शक्ति एवं प्रसन्नता को प्रकट करना होगा। दूसरे, जीवन का वर्तमान रूप कुछ तो प्राण-शक्ति के आवेग से प्रेरित वा परिचालित होता है और कुछ मन से। मन, अधिकांश में, अज्ञानयुक्त प्राणावेग का दास और पृष्ठ-पोषक है, पर अंशतः यह उसका एक चञ्चल और कम प्रकाशमय या कम योग्य मार्गदर्शक तथा उपदेशक भी है। दिव्य जीवन के लिए मन और प्राणावेग को यन्त्र-मात्र बन कर रहना होगा, इससे अधिक कुछ नहीं, और अन्तरतम हृत्पुरुष को योगमार्ग के अग्रणी या दिव्य मार्ग-दर्शन के निर्देशक के तौर पर उसका स्थान ग्रहण करना होगा। अन्त में जीवन, अपने वर्तमान रूप में, विभाजक अहं की सन्तुष्टि में तत्पर है; इस अहं को विलुप्त होना होगा और इसका स्थान सच्चे आध्यात्मिक पुरुष, अर्थात् केन्द्रीय पुरुष को लेना होगा। स्वयं जीवन को भी पार्थिव सत्ता में भगवान् की चरितार्थता की ओर मोड़ देना होगा। इसे अपने अन्दर जाग्रत् होती हुई भागवत शक्ति को अनुभव करना तथा उसके लक्ष्य का आज्ञाकारी यन्त्र बनना होगा।

CWSA खण्ड २३, पृ. १७६-७७ **श्रीअरविन्द**

## दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्‌घाटन

यह स्पष्ट हो जायेगा कि यहाँ दो सर्वथा महत्त्वपूर्ण चीज़ें हैं, हृत्केन्द्र का उद्‌घाटन तथा मन के केन्द्रों का उद्‌घाटन उन सबकी ओर जो उनके पीछे और ऊपर हैं। क्योंकि हृदय चैत्य पुरुष की ओर खुलता है तथा मन के केन्द्र उच्चतर चेतना की ओर खुलते हैं तथा चैत्य पुरुष और उच्चतर चेतना के बीच सन्धि सिद्धि का प्रधान साधन है।

प्रथम उद्‌घाटन आता है हृदय में एकाग्रता के द्वारा, हम सबके अन्दर अभिव्यक्त होने के लिए तथा चैत्य के माध्यम से सम्पूर्ण प्रकृति को ग्रहण करने तथा उसका मार्गदर्शन करने के लिए प्रभु के प्रति एक पुकार के द्वारा। साधना के इस भाग के लिए मुख्य अवलम्ब हैं, अभीप्सा, प्रार्थना, भक्ति, प्रेम तथा समर्पण। इसके साथ ही साथ होना चाहिये उन सबकी अस्वीकृति जो हमारी अभीप्सा के मार्ग में बाधक हैं।

दूसरा उद्‌घाटन आता है मस्तिष्क में एकाग्रता के द्वारा (बाद में, इसके ऊपर) और सत्ता में भागवत 'शान्ति', 'शक्ति', 'ज्योति', 'ज्ञान' तथा 'आनन्द' के अवतरण के लिए अभीप्सा, पुकार तथा दीर्घकालिक संकल्प के द्वारा—प्रथम शान्ति अथवा शान्ति और शक्ति एक साथ आते हैं।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ३२७-२८

*साधना की नींव के लिए दो मुख्य चीज़ों को सुदृढ़ रखना चाहिये-—चैत्य सत्ता का उद्‌घाटन तथा ऊपर की आत्मा की उपलब्धि। चैत्य सत्ता के उद्‌घाटन के लिए सीधा मार्ग है, श्रीमाँ पर एकाग्र होना तथा उनके प्रति आत्म-समर्पण।*

CWSA खण्ड ३०, पृ. ३२१

# चैत्य के प्रति खुलना

मनुष्य अधिकतर अपने सतही मन, प्राण तथा शरीर में रहता है, लेकिन महानतर सम्भावनाओं के साथ उसके अन्दर एक आन्तरिक सत्ता है जिसके प्रति उसे जगना है—क्योंकि अभी तो वह उससे बहुत सीमित प्रभाव पाता है जो उसे महानतर सौन्दर्य, सामञ्जस्य, शक्ति तथा ज्ञान की खोज के लिए निरन्तर धकेलता रहता है। अतः, योग की पहली प्रक्रिया है, इस आन्तरिक सत्ता की श्रेणियों को खोलना और वहाँ से बाहरी जीवन यापन करना, अपने बाहरी जीवन को एक आन्तरिक प्रकाश तथा शक्ति से सञ्चालित करना। इस तरह वह अपने अन्दर अपनी सच्ची अन्तरात्मा को पा लेता है जो इस मन, प्राण तथा शरीर का बाहरी मिश्रण नहीं होती बल्कि उनके पीछे की कोई 'वास्तविकता', एकमेव भागवत अग्नि की एक चिनगारी होती है। उसे अपनी अन्तरात्मा में जीना और पवित्र होना सीखना होगा और उसकी प्रेरणा द्वारा बाक़ी समस्त प्रकृति को 'सत्य' की ओर ले जाना होगा। इसके बाद ऊपर की ओर उद्घाटन तथा परम सत्ता के उच्च सिद्धान्त का अवतरण हो सकता है।

CWSA खण्ड ३६, पृ. ५४८

**इस योग की मौलिक उपलब्धियाँ हैं :**

१—एक चैत्य रूपान्तर ताकि पूर्ण भक्ति हृदय का मुख्य उद्देश्य बन सके और श्रीमाँ के साथ सतत ऐक्य तथा उनकी उपस्थिति में रह कर विचार, जीवन तथा क्रिया में उनके साथ एक हुआ जा सके।

२—मस्तिष्क तथा हृदय द्वारा उच्चतर चेतना की शान्ति, शक्ति, प्रकाश इत्यादि का सारी सत्ता में अवतरण, ताकि वे शरीर के कोषाणुओं तक में बस जायें।

३—एकमेव तथा भगवान् का अनन्त रूप से सर्वत्र दर्शन, श्रीमाँ को हर जगह देखना तथा उस अनन्त चेतना में निवास करना।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ३१९

हमारा चैत्य-अंश ऐसी कुछ चीज़ है जो सीधे भगवान् से आती है और

भगवान् के सम्पर्क में रहती है। यह अपने मूल में भागवत सम्भावनाओं के साथ एक ऐसा गर्भित केन्द्र है जो मन, प्राण तथा शरीर की इस निम्न त्रिविध अभिव्यक्ति को अवलम्ब प्रदान करता है। यह दिव्य तत्त्व सभी प्राणवान् सत्ताओं में विद्यमान रहता है, किन्तु यह सामान्य चेतना के पीछे छिपा रहता है, यह पहले से विकसित नहीं रहता और, विकसित हो जाने पर भी, यह हमेशा अथवा प्रायः, सामने नहीं होता; यह अपने यन्त्रों के माध्यम से उनकी सीमितताओं के अधीन, उनकी अपूर्णता जितनी स्वीकृति देती है, उसी के अनुपात में, स्वयं को अभिव्यक्त करता है। यह भगवतोन्मुख अनुभूति द्वारा चेतना में वर्धित होता है। हर बार शक्ति प्राप्त करने के बाद हमारे अन्दर एक उच्चतर गति होती है। और, अन्त में, इन गहनतर तथा उच्चतर गतियों के सञ्चयन के द्वारा एक चैत्य व्यक्तित्व विकसित हो जाता है, जिसे हम सामान्यतः चैत्य सत्ता कहते हैं। यही चैत्य सत्ता हमेशा मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन की ओर अभिमुख होने का वास्तविक, यद्यपि प्रच्छन्न कारण होती है और इसमें उसकी सबसे बड़ी सहायक होती है। इसीलिए योग में इसे पीछे से सामने की ओर लाने की आवश्यकता होती है।
CWSA खण्ड २८, पृ. १०३

... चैत्य है भागवत अग्नि की अन्तरात्मा या चिनगारी जो धरती पर व्यक्तिगत क्रमविकास को सहारा देती है और चैत्य सत्ता अन्तरात्मा की वह चेतना है जो स्वयं को, या यह कहें कि मन, प्राण तथा शरीर को अपना यन्त्र बना कर जीवन-दर-जीवन तब तक अभिव्यक्त होती रहती है जब तक कि सब कुछ भगवान् के साथ ऐक्य के लिए तैयार नहीं हो जाता।
CWSA खण्ड २८, पृ. ११३

चैत्यीकरण का अर्थ है, निम्न प्रकृति का परिवर्तन, मन में उचित दर्शन, प्राण में उचित आवेश तथा मनोभाव, भौतिक में उचित क्रिया तथा अभ्यास को ले आना—सभी कुछ प्रभु की ओर मुड़ा हो, सब कुछ प्रेम, आराधना तथा भक्ति पर आधारित हो—और अन्त में सब जगह, हमें सबमें और अपने हृदय में भी श्रीमाँ का अन्तर्दर्शन प्राप्त करना और उन्हीं को अनुभव करना चाहिये, यह अनुभव करना कि उन्हीं की शक्ति हमारी सत्ता

में कार्य कर रही है, साथ ही हमें श्रद्धा, उत्सर्ग तथा समर्पण का साथ कभी नहीं छोड़ना चाहिये।
CWSA खण्ड ३०, पृ. ३८०

चैत्य रूपान्तर में तीन प्रधान तत्त्व होते हैं : १—गुह्य आन्तरिक मन, आन्तरिक प्राण तथा आन्तरिक भौतिक का उद्घाटन ताकि व्यक्ति उस सबके बारे में अभिज्ञ हो जाये जो सतही मन, प्राण तथा शरीर के पीछे है; २—चैत्य सत्ता अथवा अन्तरात्मा का उद्घाटन जिसके द्वारा वह सामने आकर मन, प्राण तथा शरीर पर नियन्त्रण रख कर सब कुछ भगवान् की ओर खोल दे; ३—समस्त निम्न प्रकृति का आध्यात्मिक सत्य की ओर उद्घाटन—इस अन्तिम को बदलाव का चैत्य-आध्यात्मिक अंश कहा जा सकता है।
CWSA खण्ड ३०, पृ. ३३२

शुद्ध आत्मा अजन्मी है, वह जीवन-मृत्यु के घेरे से नहीं गुज़रती, वह जन्म या शरीर, मन अथवा जीवन या इस अभिव्यक्त 'प्रकृति' से स्वतन्त्र होती है। वह इन सबसे बँधी या सीमित अथवा प्रभावित नहीं होती यद्यपि वह उन्हें स्वीकार कर लेती और उन्हें सहारा देती है। इसके विपरीत, आत्मा यहाँ जन्म लेती है, फिर मृत्यु से गुज़रती है—हालाँकि वह सचमुच मरती नहीं, क्योंकि वह अमर है—वह एक अवस्था से दूसरी में, एक पार्थिव स्तर से अन्य स्तरों में जाकर वापस पार्थिव अस्तित्व में लौट आती है। क्रमविकास के द्वारा वह एक जीवन से दूसरे जीवन में विकास करती हुई आगे बढ़ती जाती है, फिर ऊपर मानव की अवस्था तक उठ आती है और उसके द्वारा विकसित होती हुई वह अपने-आपमें वह सत्ता बन जाती है जिसे हम चैत्य सत्ता कहते हैं। यह सत्ता क्रमविकास को सहारा देती और एक भौतिक, प्राणिक तथा मानसिक मानव चेतना को विकसित करती है। पृथ्वी पर यह चैत्य सत्ता भले छद्मवेश में हो, अपूर्ण प्रतीत होती हो, लेकिन यह आत्म-अभिव्यक्ति में निरन्तर बढ़ती रहती है। यह सब वह परदे के पीछे से करती है, अपने भागवत स्व का बस उतना ही दर्शाती है जितना कि अपूर्ण मानव यन्त्र सह सकता है, लेकिन एक समय ऐसा आता

है जब वह परदे के पीछे से बाहर निकलने के लिए तैयार हो जाती है और समस्त मानव प्रकृति को अपने हाथ में लेकर, उसे भागवत उपलब्धि की ओर मोड़ सकती है। यही सच्चे आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ है। तब आत्मा मानसिक मनुष्य से परे, अभिव्यक्त चेतना के उच्चतर सोपान पर चढ़ने के लिए तैयार हो जाती है—वह मन से होती हुई आध्यात्मिक अवस्था में और आध्यात्मिक श्रेणियों से होती हुई अतिमानसिक अवस्था तक पहुँच सकती है।

CWSA खण्ड २८, पृ. ५३६-३७

चैत्य सत्ता अन्य सभी के पीछे खड़ी है; उसकी शक्ति अन्तरात्मा की सच्ची शक्ति है। अगर वह सामने आ जाये तो वह बाक़ी सब पर छा जाती है; मन, प्राण तथा भौतिक चेतना उसके संस्कार ले सकते तथा उसके प्रभाव के द्वारा रूपान्तरित किये जा सकते हैं। जब प्रकृति अच्छी तरह विकसित हो जाती है तब मन में एक चैत्य, प्राण में एक चैत्य तथा शरीर में एक चैत्य प्रकट हो जाता है। जब किसी में यह प्रबल रूप से उपस्थित होता है, तब हम कह सकते हैं कि उस व्यक्ति में निश्चित रूप से अन्तरात्मा का निवास है। लेकिन कइयों में इस तत्त्व की इतनी कमी होती है कि यह विश्वास करने के लिए कि इनमें आत्मा है, हमें श्रद्धा का सहारा लेना पड़ता है। चैत्य सत्ता का केन्द्र भावनात्मक सत्ता के केन्द्र के पीछे होता है; भावनात्मक सत्ता ही ऊर्जस्वी रूप से चैत्य के सबसे निकट होती है और अधिकतम मनुष्यों में भावनात्मक केन्द्र के द्वारा ही चैत्य तक सबसे आसानी से पहुँचा जा सकता है और चैत्यभावापन्न भावना के द्वारा उसे सबसे अधिक आसानी से अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसीलिए कई लोग एक को दूसरा समझ लेने की भूल कर बैठते हैं; लेकिन दोनों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क होता है। सामान्यतः भावनाएँ अपनी प्रकृति में प्राणिक होती हैं और चैत्य प्रकृति का हिस्सा नहीं होतीं ।

CWSA खण्ड २८, पृ. १८८-८९

... तुम्हारे लिए सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ है कि तुम अपने हृदय में चैत्य अग्नि को विकसित करो और यह अभीप्सा करो कि तुम्हारी चैत्य सत्ता

तुम्हारी साधना के नेता के रूप में सामने आ जाये। जब चैत्य सत्ता ऐसा करती है तब वह तुम्हें "गुप्त अहंकार की वे गाँठें" दिखा देती है जिसके बारे में तुम कह रहे हो और उन्हें ढीला कर देती या चैत्य अग्नि में झोंक कर स्वाहा कर देती है। यह चैत्य विकास और मन, प्राण तथा भौतिक चेतना का चैत्य परिवर्तन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह उच्चतर चेतना और आध्यात्मिक रूपान्तर के अवतरण को सुरक्षित और आसान बना देता है, जिसके बिना अतिमानस हमेशा बहुत दूरी पर बना रहता है।
CWSA खण्ड ३०, पृ. ३८१

शुद्धि, सरल निष्कपटता और बिना दिखावे या माँग के एक निरहंकारी, अमिश्रित आत्म-समर्पण ही चैत्य सत्ता के सम्पूर्ण रूप से खुलने की शर्तें हैं।
CWSA खण्ड ३०, पृ. ३४९

भक्ति तथा अधिकाधिक पूर्ण आन्तरिक उत्सर्ग चैत्य के खुलने का सर्वोत्तम तरीक़ा है।
CWSA खण्ड ३०, पृ. ३८४

चैत्य-केन्द्र का सीधा उद्घाटन केवल तभी आसान होता है जब अहंकेन्द्रित भावना बहुत अधिक क्षीण हो जाती है और जब श्रीमाँ के लिए प्रबल भक्ति होती है। इसमें आध्यात्मिक नम्रता और निवेदन तथा निर्भरता का भाव आवश्यक होता है।
CWSA खण्ड ३०, पृ. ३५२-५३

... श्रीमाँ ने उचित ध्यान के समय अनुभव की गयी अवस्था का यथार्थ वर्णन किया है—वह होनी चाहिये आन्तरिक आराम की अवस्था, तनाव की नहीं, शान्त उद्घाटन की अवस्था, आतुर या हताश खिंचाव की नहीं, भागवत शक्ति के प्रति स्वयं का सामञ्जस्यपूर्ण निवेदन होना चाहिये ताकि वह हमारे अन्दर कार्य कर सके, और उस अचञ्चलता में होना चाहिये कार्यरत शक्ति का भाव और एक शान्त श्रद्धा जो उस शक्ति को बिना किसी अशान्त हस्तक्षेप के कार्य करने दे। और माँ ने तुमसे यह भी

पूछा था कि क्या तुमने उस अवस्था का अनुभव नहीं किया था, तो तुमने कहा था कि हाँ तुमने किया था और तुम यह भली-भाँति जानते भी थे। हाँ, तो वह अवस्था चैत्य उद्‌घाटन का आरम्भ है।...

CWSA खण्ड ३२, पृ. २२१-२२

अभी तक तुम्हारी साधना बहुत अधिक मानसिक है, इसलिए कठिन और धीमी है; वह चैत्य उद्‌घाटन ही है जो अधिक सन्तोषकारी और तेज़ प्रगति को सम्भव बनाता है।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ३४७ **श्रीअरविन्द**

*नीरदवरण : मेरे लिखे हुए पुर्ज़ों पर भरोसा न करके कृपया मुझे आवश्यक निर्देशन दीजिये कि क्या करना चाहिये। अगर मैंने पूँछ को देख लिया तो वह मुझे सिर तक ले ही जायेगी न!*

श्रीअरविन्द : (२६ मार्च १९३७)

तुम्हें और कुछ नहीं करना है, केवल एकाग्रता बनाये रखो, अपने अन्दर और बाहर भागवत उपस्थिति को पुकारते रहो, उसके प्रति खुले रहो, उसे ग्रहण करने की शक्ति रखो और उसे बस अपने अन्दर उतरने दो। इस एकाग्रता के समय मन जितना शान्त रहे उतना अच्छा (कोई भी विचार अन्दर या बाहर न जाये)। लेकिन इसके लिए संघर्ष करने की ज़रूरत नहीं है, सब कुछ एकाग्रता के द्वारा अपने-आप आना चाहिये।

*(नीरदवरण के साथ श्रीअरविन्द की बातचीत से)*

# दैनन्दिन अभ्यास में पथ-प्रदर्शन

अगर तुम काम करते समय अभी तक हमेशा भगवान् को याद न भी रख सको तो इससे बहुत फ़र्क नहीं पड़ता। आरम्भ में प्रभु का स्मरण कर कार्य को उन्हें निवेदित कर देना और अन्त में उन्हें धन्यवाद दे देना अभी के लिए काफ़ी होगा। या फिर तब भी याद कर लेना जब तुम कुछ देर के लिए रुक जाते हो... जब लोग काम के सारे समय प्रभु को याद करते हैं (ऐसा किया जा सकता है), तो सामान्यतया उनके मन के पीछे यह विचार चलता रहता है या फिर वे दोहरे विचार या दोहरी चेतना को बनाये रखने की क्षमता को उत्तरोत्तर विकसित कर लेते हैं—एक वह जो सामने कार्य करती है, और एक वह जो अन्दर साक्षी-रूप में सब कुछ देखती और स्मरण करती है। एक और भी तरीक़ा है जो बहुत समय तक मेरा रहा है—ऐसी अवस्था में होना जहाँ कार्य बिना किसी व्यक्तिगत विचार या मानसिक क्रिया के स्वतः ही चलता रहे, जब कि चेतना परम प्रभु में शान्त भाव से स्थिर रहे। यह चीज़, उतनी चेष्टा से नहीं आती जितनी एक बहुत सरल और निरन्तर अभीप्सा तथा समर्पण के संकल्प से आती है—या फिर उस चेतना की क्रिया द्वारा जो आन्तरिक को सहायक सत्ता से विभक्त करती है।

काम करने के लिए अभीप्सा तथा उत्सर्ग के संकल्प के साथ महानतर शक्ति को नीचे उतारने के लिए पुकारना एक ऐसा तरीक़ा है जो महान् परिणाम लाता है, भले कुछ में इसे करने में अधिक समय क्यों न लगे। मन के सभी प्रयासों के द्वारा काम करने की जगह पीछे की अथवा ऊपर की 'शक्ति' द्वारा कार्य को सिद्ध करना जानना ही साधना का महान् रहस्य है। मेरा कहने का यह मतलब नहीं है कि मन का प्रयास अनावश्यक होता है या उसका कोई परिणाम नहीं होता—अगर मन सब कुछ अपने ही बल-बूते पर करने का प्रयत्न करे तो वह आध्यात्मिक 'एथलीट्स' के अलावा अन्य सभी के लिए परिश्रम-भरा प्रयास बन जाता है। न ही मेरे कहने का यह मतलब है कि दूसरे तरीक़े की इच्छा तुम्हें इसलिए करनी चाहिये कि यह कोई छोटा या सुगम रास्ता है; जैसा कि मैंने कहा, यह भी बहुत समय लेता है। साधना के प्रत्येक तरीक़े में धीरज तथा दृढ़ निश्चय

का होना बहुत ज़रूरी है।

बलशाली के लिए बल का होना अच्छा है—लेकिन अभीप्सा तथा परम कृपा का तुम्हारी प्रार्थनाओं को उत्तर देना कोई दन्तकथाएँ नहीं हैं; ये आध्यात्मिक जीवन की महान् वास्तविकताएँ हैं।

CWSA खण्ड २९, पृ. २१४-१५

सब कुछ अन्दर से शान्त भाव के साथ करना चाहिये—काम करना, बातें करना, पढ़ना, लिखना सभी कुछ सच्ची चेतना के एक भाग के रूप में करना चाहिये—सामान्य चेतना की छितरी हुई और अशान्त क्रिया द्वारा नहीं।

CWSA खण्ड २९, पृ. २५४

आन्तरिक एकाग्रता की साधना में ये चीज़ें होती हैं :

१—हृदय में चेतना को स्थिर करके वहाँ विचार, बिम्ब अथवा भगवती माँ के नाम पर एकाग्र होना—जो कुछ भी तुम्हारे लिए सबसे अधिक आसान हो।

२—हृदय में इस एकाग्रता द्वारा मन को उत्तरोत्तर तथा प्रगतिशील रूप में शान्त करना।

३—हृदय में श्रीमाँ की उपस्थिति के लिए अभीप्सा करना और हमेशा यह चाहना कि वे ही तुम्हारे मन, जीवन तथा क्रिया का नियन्त्रण करे।

CWSA खण्ड २९, पृ. २२५ **श्रीअरविन्द**

*पुरानी प्राणिक प्रकृति ही जो यह अनुभव करती है कि उसकी मानवीय सांसारिक कामनाएँ तृप्त नहीं होंगी, इस चीज़ को इस रूप में ले रही है। इस सबमें रस नहीं लेना चाहिये किन्तु इसे अस्वीकार करना और झाड़-बुहार कर बाहर फेंक देना चाहिये। इसके स्थान पर लाना होगा एक ऐसी विशालता को जिसमें एक स्वयम्भू शान्ति और तृप्ति होती है और उस शान्ति और विशालता में श्रीमाँ की महत्तर शान्ति, शक्ति, प्रकाश, ज्ञान और आनन्द अवश्य आयेंगे।*

*'श्रीअरविन्द के पत्रों' से*

## मन्त्र के रूप में एक साधक को दी गयी श्रीअरविन्द की प्रार्थना

*ॐ श्रीअरविन्द मीरा*

*मेरे मन, मेरे हृदय, मेरे जीवन को तुम्हारे 'प्रकाश', तुम्हारे 'प्रेम', तुम्हारी 'शक्ति' के प्रति खोलो। वर दो कि सभी चीज़ों में मैं प्रभु के दर्शन करूँ।*

*CWSA खण्ड २२, पृ. ५११*

## तुम माँ की उपस्थिति में हो

*तुम कहाँ हो? यहाँ माँ की उपस्थिति में और मेरे निकट। तुम कहाँ जा रहे हो? समर्पण तथा सेवा के द्वारा भगवान् के ऐक्य के प्रति। तुम यहाँ क्या कर रहे हो? सेवा तथा भगवान् के प्रति आत्म-उत्सर्ग। बाक़ी सब—जैसा कि माँ ने तुमको लिखा—तुम्हारी सरलता और उस पूर्णता पर निर्भर करता है जिसके साथ तुम अपने-आपको उन्हें समर्पित करते और उनकी सेवा करते हो।*

*CWSA खण्ड ३१, पृ. १८२-८३*

श्रीमाँ का चित्र : उन्हीं की तूलिका द्वारा रेखांकित

*वे जो मेरी ओर देखते हैं, कभी दुःख नहीं भोगेंगे।*

*'सावित्री'*, पृ. ६८४

# एक क्षण के लिए भी यह न भूलो

एक क्षण के लिए भी यह न भूलो कि यह सब स्वयं भगवान् ने अपने आपमें से बनाया है। वे केवल हर चीज़ में उपस्थित ही नहीं हैं अपितु स्वयं हर चीज़ हैं। भेद केवल अभिव्यञ्जना और अभिव्यक्ति में है।

अगर तुम यह भूल जाओ तो सब कुछ खो बैठोगे।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १५, पृ. ५

*क्या भगवान् सभी चीज़ों में हैं, कूड़ेदानी में भी?*

सारा विश्व भगवान् की अभिव्यक्ति है लेकिन ऐसी अभिव्यक्ति जो अपने मूल के बारे में सम्पूर्ण अचेतना से शुरू होती है और थोड़ा-थोड़ा करके चेतना की ओर उठती है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १५, पृ. ४

केवल भगवान् ही यथार्थ हैं—बाक़ी सब भ्रम है।
फिर भी वे सर्वत्र हैं—अज्ञानी मनुष्य में भी और ज्ञानी में भी।

८ अप्रैल १९५८

केवल भगवान् ही सत्य हैं—बाक़ी सब कुछ मिथ्या है।
और फिर भी भगवान् सर्वत्र हैं—पापी में भी और सन्त में भी।

७ अप्रैल १९५८

केवल भगवान् ही प्रेम हैं—बाक़ी सब तो स्वार्थभरी भावुकता है।
लेकिन भगवान् का प्रेम सर्वत्र है, सब में है।

'सफ़ेद गुलाब' से १४ अप्रैल १९५८

भौतिक स्तर पर भगवान् अपने-आपको सौन्दर्य द्वारा, मानसिक स्तर पर ज्ञान द्वारा, प्राणिक स्तर पर शक्ति द्वारा और चैत्य स्तर पर प्रेम द्वारा अभिव्यक्त करते हैं।

जब हम पर्याप्त ऊपर उठ जाते हैं तो पता लगता है कि ये चारों पहलू एक ही चेतना में इकट्ठे हो जाते हैं जो प्रेम से भरपूर, प्रदीप्त, शक्तिशाली, सुन्दर, सभी को लिये हुए, सभी में व्याप्त होती है।

केवल वैश्व लीला की सन्तुष्टि के लिए ही यह चेतना स्वयं को विभिन्न दिशाओं या अभिव्यक्ति के भिन्न पहलुओं में विभक्त करती है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १५, पृ. ६

सब कुछ सोच-विचार कर, दुनिया जैसी है उसे देख कर और वह जैसी लगती है उसे लाइलाज मान कर, मानव-बुद्धि ने यही फ़ैसला किया है कि यह जगत् भगवान् की एक भूल है और अभिव्यक्ति या सृष्टि निश्चय ही कामना का परिणाम है, अपने-आपको अभिव्यक्त करने की कामना, अपने-आपको जानने की कामना, अपने-आपका आनन्द लेने की कामना। अतः करने-लायक़ बस एक ही चीज़ है, जितनी जल्दी हो सके, कामनाओं और उनके मारक परिणामों से चिपके रहने से इन्कार करके, इस भूल को समाप्त कर दिया जाये।

लेकिन परम प्रभु उत्तर देते हैं कि यह प्रहसन अभी तक पूरा नहीं खेला गया है, और फिर कहते हैं, "अन्तिम अंक के लिए प्रतीक्षा करो, तुम निःसन्देह, अपनी राय बदल लोगे।"

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १५, पृ. ९

यहाँ किसी को भी ठीक तथ्यों का पता नहीं होता लेकिन बोलता हर एक ऐसे है जैसे उसे पता है; पर वास्तव में कोई नहीं जानता।

यदि एक दिन उन सबको सत्य के दर्शन हो जायें तो, जैसा कि हर जगह होता है, यहाँ भी अधिकतर लोग अपनी अज्ञानता की बहुलता और ग़लत-सलत अर्थ निकालने से घबरा उठेंगे।

अतः, मैं सबको यह सलाह देती हूँ कि शान्त रहें और सभी निर्णयों से परहेज़ करें—यह सबसे सुरक्षित है।

अपने सम्पूर्ण प्रेम के साथ।

'सफ़ेद गुलाब' से २२ मार्च १९६७

**श्रीमाँ**

# आरम्भिक बिन्दु

... श्रीअरविन्द हमें यह बतलाने के लिए आये हैं : 'सत्य' को पाने के लिए धरती को छोड़ने की ज़रूरत नहीं, अपनी 'अन्तरात्मा' को पाने के लिए जीवन का त्याग आवश्यक नहीं, भगवान् के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए संसार का त्याग या सीमित मत रखना ज़रूरी नहीं है। भगवान् सब जगह हैं, हर वस्तु में हैं और यदि वे छिपे हुए हैं... तो इसलिए कि हम उन्हें ढूँढ़ने का कष्ट नहीं उठाते।

मात्र एक सच्ची अभीप्सा द्वारा हम अपने अन्दर का मुहरबन्द द्वार खोल सकते हैं और पा सकते हैं... वह 'कोई' चीज़ जो जीवन के सारे अर्थ को बदल देगी, हमारे सारे प्रश्नों का उत्तर दे देगी, सारी समस्याओं को हल कर देगी और हमें उस पूर्णता और 'सद्वस्तु' तक ले जायेगी जिसके लिए हम अनजाने अभीप्सा करते हैं, *केवल* वही हमें सन्तुष्ट कर सकती है और स्थायी उत्फुल्लता, सन्तुलन, बल और जीवन दे सकती है।...

आरम्भिक बिन्दु : इच्छा करना, सचमुच चाहना, इसकी ज़रूरत महसूस करना। अगला चरण : *केवल* उसी के बारे में सोचना। एक दिन आयेगा, बहुत जल्दी आयेगा जब तुम किसी और चीज़ के बारे में सोच ही न सकोगे।

यही एक चीज़ है जिसका कुछ मूल्य है। और इसके बाद...।

तुम अपनी अभीप्सा को शब्दबद्ध करते हो, अपने हृदय से सच्ची प्रार्थना का निर्झर फूटने देते हो, प्रार्थना जो तुम्हारी आवश्यकता की सच्चाई को व्यक्त करती है। और तब... हाँ, तब, तुम देखोगे कि क्या होता है।

कुछ होगा। निश्चय ही कुछ होगा। हर एक के लिए इसका रूप भिन्न होगा।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ९, पृ. ४०७-०८

... पहली गति है, बाहरी और प्रत्यक्ष वस्तुओं के साथ पूर्ण तादात्म्य से अपनी चेतना को खींच लेना, और तुम जो खोजना चाहते हो, जिस 'सत्य' का अन्वेषण करना चाहते हो उस पर एक प्रकार की एकाग्रता रखना।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ७, पृ. ३८७

# हे प्रभो, मुझे स्वयं मुझसे मुक्त कर

*(७ अप्रैल १९१४ की श्रीमाँ की प्रार्थना)*

किस प्रकार का साहस है मेरा कि मैं हमेशा लड़ाई से बचना चाहती हूँ?...

मैं कब सचमुच शक्तिशाली सत्ता बनूँगी जो पूरी तरह से साहस, ऊर्जा, वीरता और अचञ्चल अध्यवसाय से बनी हो; मैं कब पूरी तरह से अपने व्यक्तित्व को इतने पर्याप्त रूप से भूल जाऊँगी कि मैं उस यन्त्र के सिवाय और कुछ न रह जाऊँ जो केवल उन्हीं शक्तियों से गठित हो जिन्हें उसे अभिव्यक्त करना है? एकत्व की मेरी चेतना किसी भी प्रकार के तमस् के स्पर्श से कब मुक्त होगी; दिव्य प्रेम की मेरी अनुभूति कब किसी भी दुर्बलता से मिश्रित न रहेगी?

हे प्रभो, अब जब मैंने ये प्रश्न किये हैं, मेरे अन्दर समस्त विचार मर सा गया लगता है। मैं अपने सचेतन मन की खोज करती हूँ और उसे नहीं पाती; मैं अपने व्यक्तित्व की खोज करती हूँ और उसे कहीं नहीं पाती; मैं अपनी निजी इच्छा को खोजती हूँ और वह कहीं नहीं है। मैं तुझे खोजती हूँ और तू मौन है।... नीरवता, नीरवता...।

अब लगता है कि मुझे तेरी आवाज सुनायी दे रही है: "तूने कभी पूर्णतः मरना नहीं जाना। हमेशा तेरे अन्दर की किसी चीज़ ने जानना, साक्षी-भाव से देखना, समझना चाहा है। पूरी तरह समर्पण कर दे, लुप्त होना सीख, उस अन्तिम बाँध को तोड़ दे जो तुझे मुझसे अलग करता है; अपने समर्पण के कार्य को पूरी तरह चरितार्थ कर।" हे प्रभो, लम्बे काल से मैंने यही चाहा है परन्तु हाय, मैं यह कर न पायी। अब क्या तू मुझे यह करने की शक्ति देगा?

हे प्रभो, मेरे मधुर शाश्वत स्वामी, इस प्रतिरोध को तोड़ दे जो मुझे सन्ताप से भर देता है... मुझे स्वयं मुझसे मुक्त कर!

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १, पृ. ७२-७३

# आध्यात्मिक पुनर्जन्म—कर्मों से मुक्ति

... आध्यात्मिक पुनर्जन्म का अर्थ है, अपने पिछले सम्बन्धों, संसर्गों और परिस्थितियों को दूर हटा कर, मानों हर अछूते क्षण एक नया जीवन जीना। वह कर्मभोग से, अपने पुराने कर्मों की धारा से मुक्त होगा: दूसरे शब्दों में कहें तो प्रकृति की सामान्य कार्य-कारणवाली गतिविधि के बन्धनों से मुक्त होगा। जब हम अपनी चेतना में विजयी होकर भूत को एकदम काट कर अलग कर सकेंगे तो ये सब भूलें, अपराध, मूर्खताएँ आदि जो अभी तक हमारी स्मृति में बहुत जीवन्त रूप में चिपकी हुई हैं और जोंकों की तरह हमारा जीवन-रक्त पी रही हैं, अपने-आप झड़ जायेंगी और हमें आनन्दमग्न और स्वतन्त्र छोड़ जायेंगी। यह स्वाधीनता केवल विचारों की चीज़ नहीं है, यह अत्यधिक ठोस, व्यावहारिक और भौतिक तथ्य है। सचमुच हम स्वतन्त्र हैं, हमें कोई चीज़ नहीं बाँधती, हमारे ऊपर कोई चीज़ असर नहीं करती और ज़िम्मेदारी का कोई भूत हमारे सिर पर सवार नहीं है। अगर हम प्रतिक्रिया करना चाहें, अपने भूत को मिटाना या उससे बाहर निकलना चाहें तो यह केवल पश्चात्ताप या इसी तरह की और चीज़ों के द्वारा नहीं हो सकता। हमें यह भूल जाना होगा कि अरूपान्तरित भूत का कभी अस्तित्व भी था, चेतना की एक ऐसी ज्योतिर्मयी अवस्था में प्रवेश करना होगा जो सब प्रकार की जकड़नों से मुक्त कर देती है। पुनर्जन्म लेने का मतलब है, सबसे पहले, अपनी चैत्य चेतना में प्रवेश करना जहाँ हम भगवान् के साथ एक होते हैं और कर्मफल से सदा-सदा के लिए मुक्त होते हैं। चैत्य का परिचय पाये बिना यह सम्भव नहीं है; लेकिन एक बार हम अपनी सच्ची अन्तरात्मा के बारे में निश्चित रूप से सचेतन हो जायें, जो हमेशा भगवान् को समर्पित रहती है, तो सब बन्धन समाप्त हो जाते हैं। तब जीवन निरन्तर नये रूप में शुरू होता है और भूत हमारे साथ चिपका नहीं रहता। तुम्हें आध्यात्मिक पुनर्जन्म के उच्च शिखरों का कुछ आभास देने के लिए मैं कह सकती हूँ कि तुम्हें ऐसी अनुभूति हो सकती है कि सारा विश्व सचमुच हर क्षण ग़ायब होता रहता है और हर क्षण नया पैदा होता जाता है!

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ३, पृ. १८७-८८

# मन को नीरव कैसे किया जाये

*मन में वाद-विवाद को कैसे रोका जाये?*

पहली शर्त है, जितना हो सके, कम बोलो।

दूसरी शर्त है, केवल उसी चीज़ के बारे में सोचो जो तुम इस समय कर रहे हो, उसके बारे में मत सोचो जो तुम्हें करना है या जो तुम कर चुके हो।

जो हो चुका है उसके लिए कभी न पछताओ और जो होने वाला है उसकी कल्पना न करो।

जहाँ तक बन पड़े, अपने विचारों में निराशा को रोको और स्वेच्छापूर्वक आशावादी बनो। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १२, पृ. १५३-५४

*माताजी, मन को हस्तक्षेप करने से कैसे रोका जाये?*

आह! सबसे पहले तो तुम्हें इसके लिए इच्छा करनी चाहिये और फिर कहना चाहिये, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उन लोगों से कहा जाता है जो बहुत शोर मचाते हैं: "चुप रहो, चुप रहो, शान्त हो जाओ!" जब-जब मन अपने सुझावों, अपनी क्रियाओं के साथ आगे बढ़े, तुम्हें यही करना चाहिये। तुम्हें उसे शान्त, स्थिर एवं नीरव बनाना चाहिये। पहली बात यह है कि तुम्हें उसकी बात नहीं सुननी चाहिये। अधिकतर तो ऐसा होता है कि ज्यों ही ये सब, अर्थात्, विचार आदि आते हैं, व्यक्ति उन्हें देखता है, समझने की कोशिश करता है, सुनता है; तब स्वभावतया ही वह मूर्ख समझता है कि तुम उसमें बहुत रुचि ले रहे हो, और वह और भी अधिक क्रियाशील हो उठता है। तुम्हें उसकी बात नहीं सुननी चाहिये, न ही उसकी ओर ध्यान देना चाहिये। यदि वह अधिक शोर मचाये, तो उससे कहो: "शान्त रहो! बस, अब चुप हो जाओ!" पर ऐसा कहते समय तुम स्वयं शोर मत करो, समझे? तुम्हें उन लोगों की नक़ल नहीं करनी चाहिये जो चीखना शुरू करते हैं: "चुप रहो", और अपने-आप इतना हल्ला-गुल्ला मचाते हैं कि उनका शोर दूसरों के शोर से भी बढ़ कर होता है!

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. १६१

... और तब वहाँ तक पहुँच पाना जो अपने-आपमें पूर्ण नियन्त्रण तो नहीं, फिर भी एक चरण तो है ही: ऐसा करने की क्षमता, मन की सारी उथल-पुथल को बुहार फेंकने की, सारे स्पन्दनों को आने से रोक देने की क्षमता। और तब मन की सतह शून्य-सपाट हो जाती है। सब कुछ रुक जाता है, थम जाता है, जैसे खुली पुस्तक का सफ़ेद पन्ना—पर लगभग भौतिक दृष्टि से, समझे...बिलकुल कोरा! घर पर ज़रा करके देखना। यह बड़ा मज़ेदार है। और तब व्यक्ति मस्तिष्क में नाचने वाले बिन्दु तक पहुँच जाता है। मैंने देखा है, मैंने श्रीअरविन्द को किसी के मस्तिष्क में ऐसा करते देखा है, एक व्यक्ति ठीक यह शिकायत किया करता था कि विचार उसे कष्टदे रहे हैं। मानों उनका हाथ आगे बढ़ा, उस नाचते हुए छोटे काले बिन्दु को पकड़ा और ऐसे *(उँगलियों से दूर फेंकने का इशारा)* किया जैसे कोई किसी कीड़े को उठा फेंकता है, बहुत दूर। और बस, सब कुछ हो गया। सब कुछ था शान्त, नीरव, ज्योतिर्मय...। यह साफ़-साफ़ देखा जा सकता था, जानते हो, बिना कुछ कहे उन्होंने उठा फेंका—और सब ख़तम।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ९, पृ. २८२-८३

यदि तुम मन को सीधे ही नीरव करने की चेष्टा करो तो यह बड़ा कठिन होता है, प्रायः असम्भव; क्योंकि भौतिक मन कभी अपनी उधेड़-बुन बन्द नहीं करता, वह बिना रुके रेकार्ड करने वाली मशीन की तरह निरन्तर चलता ही रहता है। जो कुछ वह अंकित करता है उसे दोहराता रहता है, जब तक उसे बन्द करने का बटन नहीं होता तब तक वह चलता ही रहता है, अनिश्चित काल तक चलता रहता है। दूसरी ओर, यदि तुम अपनी चेतना को किसी उच्चतर लोक में, सामान्य मन से ऊपर, ले जा सको तो इस तरह 'ज्योति' की ओर उद्घाटित होने से मन स्थिर हो जाता है, अब वह हिलता-डुलता नहीं, और इस प्रकार मन की जो नीरवता प्राप्त होती है वह स्थायी बन सकती है। उस लोक में एक बार प्रवेश कर जाने के बाद, तुम कभी उससे एकदम बाहर नहीं आ सकते—बाह्य मन सदा ही स्थिर बना रहता है।

बस, सच्चा समाधान है उच्चतर प्रकाश के लिए अभीप्सा करना।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ४, पृ. २१६-१७

## अपने स्वभाव को बदलना

... श्रीअरविन्द हमसे कहते हैं कि यदि हम स्वभाव को नहीं बदल सकते तो फिर योग करने का कष्ट उठाने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि योग किया ही जाता है स्वभाव को बदलने के लिए, अन्यथा इसका कोई अर्थ नहीं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ४, पृ. ३९७

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समर्पण है तुम्हारे चरित्र का, तुम्हारी जीवन-विधि का समर्पण, ताकि वह बदल सके। यदि तुम अपनी एकदम निजी प्रकृति का समर्पण न करो तो यह प्रकृति कभी परिवर्तित नहीं होगी। बस, यही चीज़ है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तुम किन्हीं विशेष तरीक़ों से समझते हो, विशेष ढंगों से प्रतिक्रिया करते हो, विशेष रूपों में अनुभव करते हो, लगभग विशेष रीतियों से प्रगति करते हो, और सबसे बढ़ कर, एक विशेष दृष्टि से जीवन की ओर दृष्टिपात करते और उससे विशेष वस्तुओं की आशा करते हो—हाँ, बस इसे ही तुम्हें समर्पित करना होगा। कहने का मतलब, यदि तुम वास्तव में दिव्य 'ज्योति' को पाना और रूपान्तरित होना चाहते हो तो तुम्हें अपनी सत्ता और जीवन के पूरे तौर-तरीक़े को अर्पित कर देना होगा—उसे उद्घाटित करके, यथासाध्य अधिक-से-अधिक ग्रहणशील बना कर अर्पित करना होगा ताकि दिव्य 'चेतना', जो यह देखती है कि तुम्हें कैसा होना चाहिये, सीधे रूप में कार्य कर सके और इन समस्त क्रियाओं को अधिक सच्ची क्रियाओं में, तुम्हारे यथार्थ सत्य के साथ अधिक संगत क्रियाओं में परिवर्तित कर सके। यह बात अपने कर्मों को समर्पित करने की अपेक्षा अनन्तगुना अधिक आवश्यक है। सच पूछा जाये तो मनुष्य जो कुछ करता है (वह जो कुछ करता है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है यह तो स्पष्ट ही है) वह नहीं, बल्कि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह **क्या** है। कार्य-कलाप चाहे जो हो, वास्तव में कार्य जिस तरह किया जाता है वह नहीं, बल्कि चेतना की जिस स्थिति में वह किया जाता है वह महत्त्वपूर्ण है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ४, पृ. ४४५-४६

# भागवत एकत्व प्राप्त करना

*मधुर माँ, कहा जाता है कि यदि कोई टूटता हुआ तारा देखे और उसी क्षण किसी वस्तु की अभीप्सा करे तो वह अभीप्सा उस वर्ष के अन्दर पूरी हो जाती है। क्या यह सच है?*

क्या तुम जानते हो कि उसका मतलब क्या है?—अभीप्सा **ठीक उसी समय** स्पष्ट रूप में शब्दबद्ध होनी चाहिये जब टूटता हुआ तारा दिखायी देता हो; और वह बहुत लम्बे समय तक नहीं रहता, है न? हाँ, तो यदि तारे के दिखायी देते-देते कोई अभीप्सा मन में स्पष्ट रूप ले सके तो इसका अर्थ है कि वह **वहाँ** सर्वदा थी, उपस्थित थी, चेतना में सबसे आगे थी—यह बात सामान्य चीज़ों पर लागू नहीं होती, उनसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं, इसका सम्बन्ध बस आध्यात्मिक अभीप्सा के साथ है—परन्तु मुख्य बात यह है कि यदि तुम ठीक उसी मुहूर्त अपनी आध्यात्मिक अभीप्सा को स्पष्ट रूप में बोल सको तो इसका अर्थ है कि वह तुम्हारी चेतना के ठीक सम्मुख भाग में है, कि चेतना में उसी का प्राधान्य है। और, अनिवार्यतः, जिस चीज़ की तुम्हारी चेतना में प्रधानता होती है, वह बड़ी तेज़ी से उपलब्ध हो सकती है।

मुझे यह प्रयोग करने का अवसर प्राप्त हुआ था। बिलकुल यही। जिस क्षण सितारा गिरा, ठीक उसी क्षण चेतना से उछल पड़ा: "अपने शरीर के लिए भागवत एकत्व प्राप्त करना होगा।" बस, उसी मुहूर्त।

और वर्ष के समाप्त होने से पहले ही, वह पूरा हो गया।...

वह इस कारण हुआ कि मेरी सारी चेतना में उसकी प्रधानता थी और मैं उसके सिवा और कोई बात नहीं सोचती थी, मैं केवल उसी को चाहती थी, केवल उसी का चिन्तन करती थी, केवल उसी के लिए कार्य करती थी। अतएव, जिस कार्य में साधारणतः समूचा जीवन लग जाता है—कहा जाता है कि इसमें कम-से-कम ३५ वर्ष लग जाते हैं!—बारह महीने बीतने से पहले ही वह सम्पन्न हो गया था।...

और, चूँकि मैं केवल उसी का चिन्तन करती थी इसलिए ठीक जिस समय तारा चमका मैं उसे शब्दों में व्यक्त कर सकी—केवल एक अस्पष्ट धारणा नहीं—इस भाँति ठीक-ठीक शब्दों में प्रकट कर सकी।...

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ८, पृ. २५४-५५

## दैनन्दिन अभ्यास के लिए दो सुझाव

नींद में से बाहर निकलते हुए तुम्हें कुछ क्षणों के लिए चुपचाप रहना चाहिये और आने वाले दिन का भगवान् के प्रति उत्सर्ग करना चाहिये। उन्हें हमेशा सभी परिस्थितियों में याद रखने के लिए प्रार्थना करनी चाहिये।

सोने से पहले तुम्हें कुछ क्षणों के लिए एकाग्र होना चाहिये। बीते हुए दिन पर नज़र डालो, याद करो कि कब-कब और कहाँ तुम भगवान् को भूल गये थे और प्रार्थना करो कि इस तरह फिर न भूलो।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १५, पृ. २३०

प्रभु का सतत स्मरण :

यह मात्र स्मरण नहीं बल्कि प्रभु के द्वारा सतत जीना और प्रभु में सतत जीना है। हमेशा प्रभु की निकटता का अनुभव करना है।...

Throb of Nature, पृ. १४५ मोना सरकार

... तुम्हें अपनी अभीप्सा, अपनी कृतज्ञता, अपनी आराधना, जो प्रगति तुम करना चाहती हो उसे अभिव्यक्त करने के लिए रोज़ एक प्रार्थना लिखनी चाहिये। यह ज़रूरी नहीं है कि वह लम्बी हो, बस कुछ-एक पंक्तियाँ; और यह तुम्हें स्वयं को समझने में तुम्हारी सहायता करेगी। तुम ऐसे लिखो मानों तुम उनके और मेरे साथ सीधा बातें कर रही हो और इस तरह तुम उनके और मेरे साथ एक घनिष्ठता स्थापित कर लोगी।...

'सफ़ेद गुलाब' से **श्रीमाँ**

## परिशिष्ट :
## एक साधक के द्वारा श्रीमाँ की उपस्थिति की एक अनुभूति

*(यहाँ हम "अनन्तता के तट पर मेधानन्द के साथ" पुस्तक का छठा अध्याय दे रहे हैं। यह किताब १९९८ में श्री मीरा ट्रस्ट ने छापी थी, इसमें मेधानन्द की आत्मकथात्मक सामग्री है। फ़रवरी १९५२ में मेधानन्द आश्रम में हमेशा के लिए रहने आ गये थे, श्रीमाँ ने उन्हें नया नाम मेधानन्द दिया। इन्होंने आश्रम के पुस्तकालय में मृत्यु-पर्यन्त कार्य किया। इनका देहावसान पॉण्डिचेरी में मई १९९४ में हुआ था। निम्नांकित 'नोट्स' में उन्होंने अपनी अनुभूतियाँ दर्ज की हैं, ये उन्होंने १९४८ में अपने ताहिती (दक्षिण प्रशान्त महासागर का एक द्वीप) के निवास-काल में लिखे थे।)*

*१९४८ में किसी ने मेधानन्द को श्रीअरविन्द की The Mother (माता) पुस्तक भेंट में दी जो ताहिती में तभी पहुँची थी। मेधानन्द बिलकुल नहीं जानते थे कि यह पुस्तक उनके जीवन में कैसा आध्यात्मिक-विस्फोट करेगी! निम्नांकित पृष्ठों में हम इस विस्फोट के बाद एक महीने तक उनके द्वारा लिखी कुछ अनुभूतियों को दे रहे हैं जिनके द्वारा वे महान्-दिव्य माँ के साथ अपने अन्दर और सर्वत्र एक घनिष्ठ सम्बन्ध में जुड़ गये थे—यह बात ध्यान देने वाली है कि यह पुस्तक उनके बिस्तर के क़रीब, मेज़ पर जब रखी हुई थी—जब उन्होंने उसे पढ़ना भी शुरू नहीं किया था—तब से ही उन्हें ये विलक्षण अनुभव होने आरम्भ हो चुके थे।*

*(किताब में उद्धृत प्रकाशक की टिप्पणी)*

**पहला हफ़्ता**

हमारे जीवन की एक झलक : चीज़ों के मूल के साथ एक होने का गभीर सन्तोष। घण्टों बेचैनी बनी रही, क्योंकि मैंने फिर से अपने-आपको साधारण मनुष्य की सीमित चेतना में पाया। 'परम सत्ता' का निकट आना, जो प्रकाश में नहा रही थी, जो चीज़ों के आभासी रूपों के पीछे की विशालतर नामहीन वास्तविकता है। इस प्रेम का उत्साह जो इन विश्वों को जन्म देता, उन्हें थामे रखता फिर नष्ट कर देता है।

जब तुम उदास होते हो 'उनसे' दूर हो जाते हो। जब तुम प्रसन्न होते हो 'उनके' निकट होते हो। पाखण्डी दार्शनिक की अपेक्षा गाता हुआ यह नन्हा झींगुर 'उनके' साथ ज़्यादा तदात्म है। जब तुम उदास हो तो यह निश्चित लक्षण है कि तुम *माया* में गिर चुके हो—क्योंकि 'वे' तो परमानन्द का आवेग हैं।

**बृहस्पतिवार, १५ जनवरी १९४८**

श्रीमाँ की कृपा द्वारा, समाधि का पहला अनुभव हुआ।

**शनिवार**

आज सवेरे जैसे ही मैं सोकर उठा तो सबसे पहले जो चीज़ हुई वह थी, श्रीमाँ की उपस्थिति की अनुभूति, और आनन्द की पुलकों के साथ रोमाञ्चित हो मैंने कल और परसों के बारे में सोचा।

"माँ, रोज़ सवेरे, आँखें खोलने से पहले मैं आपके आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करूँगा!" मैंने अपनी मेज़ पर छोटी पुस्तिका "माता" देखी। अभी तक मैं उसे पढ़ नहीं पाया हूँ, कितनी सुन्दर है वह। आज सवेरे मुझे डर लगा : ऐसा लग रहा था कि मेरी सारी कामनाएँ पूरी हो रही हैं। मैं किसी से बातें करना चाहता था—और यूँ ही, संयोगवश उससे मेरी मुलाक़ात हो गयी। मुझे एक उपकरण की आवश्यकता है—किसी ने मुझे दे दिया।

"माँ, मुझे ऐसा बना दीजिये कि मैं अपने लिए किसी भी चीज़ की कामना न करूँ, आपकी ही इच्छा पूरी हो, मेरी इच्छा मृत ही बनी रहे, वर दीजिये कि मेरे अन्दर आप ही की इच्छा का शासन हो—वस्तुतः जैसा कि वह हर जगह करती ही है।" बाद में, मीतिआरो में (मूरिआ और ताहिती के बीच चलने वाला दो मस्तूलों का जहाज़), मैं एक छोटे से बच्चे की तरह हो गया जो अपनी आँखें पहली बार खोल रहा हो, सब कुछ नया और आश्चर्य में डालने वाला था—प्रकाश, लहरें, हवा—सब कुछ। माँ ने मुझे एक नयी आत्मा प्रदान कर दी थी। "माँ, मेरी मदद कीजिये कि मैं अहंकारी न बन जाऊँ—एक लाख में से अपने चुनाव की वजह से। आप मुझे सब कुछ क्यों देती हैं? मेरे पास तो आपको देने के लिए कुछ भी नहीं है।" आज शाम, मेरे हृदय में, इस आन्तरिक समुद्र के ऊपर कितनी

शान्ति, कितनी अचञ्चलता तैर रही थी।

"माँ, मुझे स्वयं को इस स्थिरता को नहीं सौंप देना चाहिये। माँ, मेरी अन्तरात्मा को आप तक अधिकाधिक पहुँचना चाहिये। वर दीजिये कि मेरा हृदय दिन-पर-दिन आपके ही पवित्र नाम का गान तथा जाप करे, कि वह आपके भागवत आनन्द से परिपूर्ण हो जाये। माँ, मुझे अपने लिए पूर्ण पात्र बना लीजिये।" अब मुझे यह बात निरन्तर आश्चर्य में डाल रही है कि हमारी माँ किसी भी तरह कठोर या सख़्त नहीं हैं। वे पूरी तरह से सुखदायी हैं, उन्मुक्त हास्य हैं, अपने शत्रुओं पर मुस्कुराती हैं, अपने बच्चों पर सान्त्वनादायक माधुर्य उँडेलती हैं। वे यावे (देवता) के स्थान पर अधिक डायनोसिस (मादकता के देवता), यानी गम्भीर की जगह मादक अधिक हैं।...

सन्त फ़्रांसिस ने भी कहा है, *भाइयो, 'आओ हम प्रभु में आनन्द मनायें —हम मृत्यु को याद नहीं रखेंगे, बल्कि शाश्वत जीवन को याद रखेंगे।'* जब तुम्हारी आँखें प्रेम से भर जायें, इतनी लबालब हो जायें कि आँसू बहाने लगें तब तुम माँ को हर जगह देख सकते हो।

मैं और सोना नहीं चाहता था क्योंकि नींद में व्यक्ति माँ की उपस्थिति के बारे में सचेतन नहीं रहता। लेकिन आजकल ऐसा लग रहा है कि मैं स्वास्थ्य-लाभ कर रहा हूँ। मुझे याद ही नहीं पड़ता कि अपने जीवन में मैं कभी ऐसे सोया होऊँ जैसे आजकल सो रहा हूँ। जैसे ही मैं आँखें बन्द करता हूँ, एकदम से पूर्ण शान्ति, पूरी शिथिलता और यह दृढ़ विश्वास छा जाता है कि जब मैं उठूँगा, 'वे' वहाँ ज़रूर होंगी। पहले सो जाने का मतलब होता था, अपने-आपको और ज़्यादा छायाओं को सौंप देना, स्वयं को *माया* के दु:स्वप्नों में झोंक कर अरक्षित छोड़ देना। अब मेरी नींद भी छायाओं के बिना, मधुर-शान्त प्रकाश से भरी रहती है। कितना मधुर-सुखद होता है अपनी माँ की बाँहों में सोना। "माँ, मैं चाहता हूँ कि मेरी तर्कबुद्धि काम न करे। मैं हर चीज़ को समझने की अपनी इस इच्छा से पिण्ड छुड़ाना चाहता हूँ। माँ, आपने जिस व्यक्ति को छुआ है वह अब और कुछ समझना नहीं चाहता—लेकिन हर एक का, हर वस्तु का आलिंगन करता है।" "माँ, रामकृष्ण परमहंस की किताब में लिखा है कि जिस व्यक्ति को सिद्धि प्राप्त करनी हो उसे एकाग्रचित्त होना चाहिये। मैं एकाग्रचित्त नहीं हो

सकता—मैं अपने-आपको खो देना चाहता हूँ। मुझे भक्ति और आराधना के पथ द्वारा अपने पास आने की अनुमति दीजिये।"

वह जो परमानन्द में एक से दूसरे शिखर पर छलाँगें मार रहा है, उसके लिए तर्कबुद्धि के पथ बहुत धीमे और दुःखदायी बन जाते हैं। अभी पल-भर के लिए मैंने काम से हाथ समेट लिये। पहले तो थकान की वजह से मैं ऐसा करता था, लेकिन अब नये बल का पान करने के लिए यह करता हूँ। श्रीमाँ पीछे से मेरे पास आयीं और उन्होंने मुझे छुआ, और वे मेरे अन्दर आन्तरिक फ़व्वारे की तरह उतर गयीं, मनोहर संगीत की तरह, रीढ़ की हड्डी से होती हुई मेरे पोर-पोर में समा गयीं। और अब मैं सम्पूर्ण 'आनन्द' हूँ—क्योंकि यह पहली बार हुआ कि मेरे बिना पुकारे वे आ गयीं। मैं मुश्किल से लिख पा रहा हूँ। "मधुर माँ, मैं आपके साथ कार्य करना चाहता था—और आपने आकर मुझे रोक दिया!" मैं देख रहा हूँ कि मैं न के बराबर पढ़ रहा हूँ। पहले मैं अपने-आपको सारा-सारा दिन किताबों में डुबाये रख सकता था। लेकिन शब्द भी मायाजाल हैं, और सच्ची उक्तियाँ भी विकृत हो जाती हैं, बहुधा भयंकर व्यंग्योक्तियाँ होती हैं। माँ नीरवता पसन्द करती हैं, पवित्र नीरवता, ऐसी नीरवता जो कितनी मृदु होती है, ऐसी निःशब्दता जो सुनती है, नीरवता जो उनकी प्रतीक्षा करती है, तब वे वहाँ होती हैं—वे भी नीरव होती हैं और दो नीरवताएँ एक-दूसरे में मिल जाती हैं।

श्रीमाँ को संगीत से प्रेम है, संगीत जो हुलसाता है, संगीत जो रोता है। तब हृदय से निकले हुए सुर 'उनके' अन्दर प्रवेश कर जाते हैं, और आत्मा के सागर में शाश्वत स्पन्दन बन कर वहीं विलीन हो जाते हैं।

अपनी किताबें व्यवस्थित करते समय मैं सन्त फ़्रांसिस की जीवनी के पन्ने पलटने लगा—अब मुझे सारा-का-सारा दोबारा पढ़ना होगा। कितना सुन्दर जीवन था उनका, माँ के कैसे सच्चे बालक थे वे। वे माँ को सर्वत्र देखते थे—"अग्नि में", "मेरे भाई सूरज में", "मेरी बहन पानी में"—कहते थे वे। यहाँ तक कि पत्थर भी उनके लिए भगवान् थे।...

"माँ? चूँकि आकाशगंगाएँ आपके चरणों में धूलि-सम हैं, भला मैं, इतना छोटा, इतना बेतुका, उन्हें आलिंगन में भरने का कैसे प्रयास कर सकता हूँ?"

"क्योंकि, मेरे बच्चे, जिस अनुपात में तुम अपने-आपका समर्पण करते हो, स्वयं को छोड़ देते हो, उस अनुपात में तुम मेरा हिस्सा बनते जाते हो। मेरे अन्दर प्रवेश करके तुम वर्धित होगे, और एक दिन तुम तारों-भरे आकाश को धूल के समान अपने क़दमों पर पाओगे।"

आज तक यह *माया* मुझे इतनी सुन्दर न लगी! पेड़ों की छाल 'उसका' परिधान है, चट्टानें और शैलमालाएँ 'उसकी' भव्य पोशाकें हैं। सूर्य और प्रकाश उसका स्मित हैं। झरने और पवन उसका मधुर गान हैं।

**बृहस्पतिवार**

आज एक हफ़्ता हुआ जब 'उनकी' परम 'कृपा' मेरे अन्दर उतरी थी। एक हफ़्ता जो अनन्तकाल की तरह प्रतीत हो रहा है, अद्वितीय समृद्धियों का एक हफ़्ता।

एक क्षण पहले मैंने उदासी का अनुभव किया, एक हफ़्ते पहले जब उन्होंने पहली बार मुझे आशीर्वाद दिये थे, उस प्रसन्नता को सोचते-सोचते मैं उदास हो गया। यह तो जीवन का सार है कि स्मृतियों तथा आशाओं से सन्तुष्ट न रह कर हमेशा अधिकाधिक की माँग करना। मैंने सीख लिया है कि व्यक्ति को कठोर नहीं होना चाहिये, उसे किसी चीज़ की माँग नहीं करनी चाहिये, 'उनकी' उपस्थिति तक की नहीं। लेकिन अभी-अभी मैंने श्रीअरविन्द की वह अद्‌भुत लघु पुस्तिका खोली, कि मेरी दृष्टि मुख्य शीर्षक पर पड़ी "The Mother" (माता), 'वे' एक बाण की तरह मेरे अन्दर बिंध गयीं।

**शनिवार**

कल मैंने सारा समय इधर-उधर की भाग-दौड़ में ही बिताया—सचमुच *माया* में खो गया एक सच्चा बालक। लेकिन शाम को मैं एक चीनी के साथ था, थका-हारा, घर जाने के लिए तैयार हो रहा था—कि तभी मैंने जान लिया कि 'वे' बाहर मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं। सारी थकान ग़ायब हो गयी—मैंने उस वृद्ध चीनी को क़रीब-क़रीब बाँहों में भर लिया। और बाहर 'उन्होंने' मेरे अन्दर प्रवेश कर लिया, या मैंने 'उनके' अन्दर, मुझे पता नहीं—मानों किसी घण्टे के दो सुर एक-दूसरे में समा गये।

अब मैं चल नहीं रहा था, मैं भारहीन बन गया था, मैं चारों तरफ़

जादुई सौन्दर्य से घिरा हुआ था। जिस घास पर मैं चल रहा था वह 'वे' थीं। मैंने फिर उस पर पग धरने का साहस नहीं किया। ओस की हर एक बूँद 'वे' ही थीं। मेरे दिये की बाती की रोशनी: 'वे' थीं। सितारे: 'वे' थीं। लहर-पर-लहर वे मेरे अन्दर उतरती गयीं। मैं मुश्किल से सीधा रह पा रहा था। अब भी, जब मैं यह लिख रहा हूँ, थिरकन-पर-थिरकन मेरे अन्दर नाच रही हैं। मुझे मालूम नहीं कि कैसे और कब मैं घर लौटा।

"माँ, अगर आपने अपने बच्चों के लिए यह तैयार किया है तो बस मेरी एक ही प्रार्थना है, आज की आज आप हमें हमारा स्वर्गिक आहार प्रदान कर दीजिये।"

**अगले तीन हफ़्ते**

माँ : मेरे बच्चे, जब तुम मुझे पुकारते हो, तो जो अनुभव करते हो वह बहुत छोटा आनन्द होता है। यह मत सोचो कि तुमने अपने आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य पा लिया है। चरैवेति—आगे ही आगे बढ़ते चलो। मेरे अन्दर डुबकी लगाओ। एक समय आयेगा जब तुम मुझे चरितार्थ कर लोगे, जब तुम मुझे सर्वत्र देखोगे, जब मैं हमेशा तुम्हारे साथ बातें कर पाऊँगी।

**बुधवार, ४ फ़रवरी १९४८**

आज मैं काम कर रहा था, मुझे पता नहीं कैसे, मैंने उन्हें खो दिया। मैंने बहुत बेचैनी का अनुभव किया और मैं उन्हें ढूँढ़ने जंगल की ओर निकल गया। मैंने उन्हें पेड़ों में, चट्टानों पर, सब जगह छिपे हुए देखा—बस मेरे अपने अन्दर वे नहीं दिखीं। मैंने उनका पवित्र नाम पुकारा, लेकिन उन्होंने उत्तर नहीं दिया। मैं उदास हो गया और मैं बहुत समय तक उन्हें पुकारता रहा। खिन्न, मैं लौट आना चाहता था। और अचानक वे हँसीं, अपनी उपहासास्पद हँसी—"नन्हा बछड़ा अपनी माँ को बुला रहा है, 'माँ'! और यह नहीं देख पा रहा कि उसकी माँ उसके पीछे ही हैं! क्या तुम्हें अब भी मुझे बुलाने की ज़रूरत है? क्या तुम नहीं जानते कि मैं हमेशा तुम्हारे साथ, तुम्हारे अन्दर, तुम्हारे चारों तरफ़ हूँ? बस अपनी आँखें खोलो! सुनो! यीशु ने तुमसे कहा है, द्वार खटखटाओ और वह तुम्हारे लिए खोल दिया जायेगा। मैं तुमसे कहती हूँ: खटखटाओ मत, पुकारो मत, तुम्हारी

माँ का घर तुम्हारे लिए हमेशा खुला रहता है।" लेकिन माँ, मुझे हमेशा आपको खोने का भय रहता है! "इसी भय की वजह से तुमने मुझे अपने अन्दर अनुभव करना बन्द कर दिया है।"

ओह, कितना सुखद होता है वह दिवस जब तुम उनके अधिकार में होते हो। माँ के प्रेम के अधीन—जब कोई भी क्रिया—जटिल-से-जटिल क्रिया भी—तुम्हें 'उनसे' अलग नहीं कर सकती, जब तुम्हारा सारा ध्यान पूरी तरह से 'उन्हीं' में निमग्न रहता है, जब तुम इस बात से अभिज्ञ हो जाते हो कि 'वे' ही सञ्चालक हैं, कर्ता हैं और तुम्हारा शरीर 'उन्हीं' की आज्ञा मान रहा है, जब तुम 'उनसे' अभिभूत होते हो, जब तुम निरन्तर 'उन्हें' अपने हृदय में बसाये रखते हो। तुम देखते हो, और उनके सिवाय और कुछ नहीं देख पाते, तुम बस 'उन्हीं' की वाणी सुनते हो, बस उसी पर कान देते हो, तुम अनुभव करते, छूते, चखते, पीते, बोलते, सोचते हो—केवल 'उन्हीं' को।

काम बन्द करने के लिए बाध्य होना, प्रतिक्षण अपनी आगे की कूच में इसलिए रुक जाना क्योंकि तुम्हारे अन्दर परमानन्द की बाढ़ एकदम से उफन उठती है, तुम्हें यह उपलब्धि प्राप्त हो जाती है कि तुम पूरी तरह से मुक्त हो, कि अब तुम और छायाओं की इस घाटी के वासी नहीं रहे, कि तुम बुद्ध के पथ पर हो, कि तुम वह हो जो सब जानता है... माँ, यह सब आपकी कृपा से हो रहा है। आप ही रथ की सारथी हैं, आप ही पथ हैं और आप ही लक्ष्य।

वस्तुओं के इस जंगल में प्रकाश देखने के लिए हम हमेशा किसी पेड़ के शिखर पर नहीं चढ़ सकते। लेकिन मेरे पथ को उजागर करने के लिए आप समय-समय पर सच्चे सूरज की एक किरण भेजती रहती हैं।

कई कारणों से, बहुत समय से मैंने इस कॉपी में कुछ नहीं लिखा। मुख्य वजह है कि मेरे अन्दर अनुभूतियों का सैलाब टूट पड़ रहा है। पहले मैंने लिखना इसलिए रोका क्योंकि इन पृष्ठों को दोबारा पढ़ना मेरे लिए दुःखदायी था, क्योंकि इनमें बस मेरे बारे में ही है—बस मैं, मैं और मैं। और वह सूत्रीकरण जो कल सच था, वह बृहत्तर प्रकाश में देखने पर आज मिथ्या हो गया। हमेशा ऐसे गहनतर सत्य होते हैं जो एक बार अभिव्यक्त हो जाने पर विरोधाभास या अधिक छिछले सत्य बन जाते हैं।

इसलिए मैंने कहा : सब कुछ नीरवता में बीत जाने दो। लेकिन माँ मुझे लिखने का आदेश दे रही हैं।

एक महीना भी नहीं हुआ कि मैंने माँ को जाना, लेकिन मेरे लिए यह सम्पूर्ण जीवन-काल की भाँति है। अब आरम्भ की तरह विस्मयकारी आनन्दातिरेकों की बाढ़ नहीं आ रही, लेकिन कार्य के समय प्रायः उनकी निरन्तर उपस्थिति बनी रहती है। जब मैं आराम करता हूँ, वे मेरे अन्दर ध्यान करती हैं, और जब मैं उनकी इच्छा का पालन करता हूँ तब हमेशा उनके सुखद-सरस लाड़-दुलार का अनुभव करता हूँ। जब मैं उन्हें किसी वस्तु या किसी सत्ता में मिलता हूँ, अब भी उसी समान गभीर रोमाञ्च का अनुभव करता हूँ। और मैं यह नहीं बता सकता कि कौन-सी चीज़ ज़्यादा मूल्यवान् है—वह परमानन्द या उनकी मधुर उपस्थिति की अभिज्ञता।

माँ, मैं आपको अपने आँसू भेंट कर रहा हूँ। वे कितने मधुर थे, लेकिन उन आँसुओं की इच्छा करना मेरी भूल थी, क्योंकि वे *माया* की चीज़ हैं। माँ मैं *माया* को पसन्द करने लगा हूँ, क्योंकि मैं हर जगह आपका प्रतिबिम्ब देखता हूँ—सितारों में, बादलों में, जल की शीतलता में। मैं इस प्रतिबिम्ब को पुनः आपको समर्पित करता हूँ, कृपया इसे वापस ले लीजिये। अपने कार्य और कारण में यह केवल आपकी ही वस्तु है। माँ, मैं अपना आनन्द आपकी भेंट चढ़ाता हूँ। यह आनन्द मेरे शरीर के पोर-पोर में रम गया था।

इस अक्खड़ हर्ष को वापस ले लीजिये और मुझे त्याग प्रदान कीजिये, पूर्ण त्याग, क्योंकि केवल वही हमारे ऐक्य को पवित्र और शाश्वत बना सकता है।

माँ केवल पवित्र हृदय में ही प्रवेश करेंगी, प्रत्येक कामना से रहित हृदय में, प्रत्येक उदासी से रहित हृदय में, सभी अहंकारों से ख़ाली हृदय में, ऐसे हृदय में जो अपने-आपको भूल चुका हो, ऐसे हृदय में जो एकदम शुद्ध आईना हो जो पूरी तरह से निर्मल प्रतिबिम्ब दिखलाता हो। माँ ऐसे हृदय में रहना चाहती हैं, क्योंकि ऐसे हृदय के द्वारा वे अपनी *माया*, अपनी क्रीड़ा को देखती रहती हैं। फिर वे अपने गुलाबों की सुन्दरता देखेंगी, अपने प्राणियों का संगीत सुनेंगी, अपने भागवत प्रेम का असर देखेंगी।

अब अकेले न रहने के लिए व्यक्ति को एकदम से अलग-थलग, एकाकी बनना होगा। भव्यतम राज्य में रहने के लिए व्यक्ति को यहाँ किसी

भी वस्तु का स्वामी नहीं बनना होगा। कितने हर्ष के साथ ईसामसीह कह सकते थे : मेरा राज्य इस धरती का राज्य नहीं है। मैं कल्पना करता था कि वे यह एक तरह की उदासी के साथ कहते होंगे। लेकिन आँसुओं की इस घाटी से बाहर निकलने के लिए उन्होंने कितनी जल्दी मचायी होगी!

अब मुझे लगता है कि रोज़मर्रा के इन छिटपुट कामों के बीच मेरे अपने लिए एक पल भी नहीं है : सीपियों को खुरचना, कॉफ़ी के बीजों को अलग करना, उन अतिथियों से मिलना जो यह नहीं समझ पाते कि मेरा समय कितना मूल्यवान् है—सामान्य अर्थ में नहीं, जब लोग कहते हैं कि समय पैसा है।...

जब मेरे आँसू निकल रहे थे, मेरी बेटी ने मेरे पास आकर कहा—"पापा, क्या हुआ? आप रो रहे हैं?" मैंने कहा, "नहीं रानी, ये ख़ुशी के आँसू हैं।..." और चूँकि वह मेरे आँसुओं में प्रतिबिम्बित हो उठी, *माया* भी भव्य और महान् बन गयी।

## जिन मित्र ने मेधानन्द को "The Mother" (माता) पुस्तक भेंट की थी, उनके नाम पत्र :

*मेरे प्रिय मित्र, मैं तुम्हें सारी ज़िन्दगी धन्यवाद देता रहूँ फिर भी तुम्हारा ऋण कभी नहीं चुका पाऊँगा। मुझे मालूम है कि तुम मुझे यही जवाब दोगे कि तुम तो बस एक साधन थे। लेकिन थे कितने पूर्ण साधन। और प्रेम का वह स्रोत जो उनसे प्रवाहित होता है, वह उमड़ आया हो और वह 'ज्ञान' के पथ पर अग्रसर होने में तुम्हारी सहायता कर सके तो मैं बहुत प्रसन्न होऊँगा। वह सतत आनन्द जिसे मैं अनुभव कर रहा हूँ, निश्चित रूप से इस जीवन में तो मैं उसके योग्य नहीं हूँ, और अगर क्षण-भर के लिए भी वह साक्षी है तो मेरे कई जन्म सफल हो गये, बाक़ी सब परम कृपा है। मनुष्य भगवान् को जो भी कुछ दे सकता है उसके सामने तो यह कृपा इतनी विशाल, इतनी विशाल है कि हम कह सकते हैं कि यह अनुपातहीन है, और समस्त ब्रह्माण्ड तथा उसकी सभी आकाशगंगाओं के सम्मुख भला मनुष्य कहाँ टिक सकता है, उसकी सारी महानता इस सबके सामने एकदम से ग़ायब हो जाती है।*

*साभार : श्री मीरा ट्रस्ट, पॉण्डिचेरी*

**'पुरोधा'**

# दैनन्दिनी

**मार्च**

१. क्या तुम जानना चाहते हो कि कृष्ण को हमेशा बालक-रूप में ही क्यों चित्रित किया जाता है? इसलिए कि वे निरन्तर प्रगति करते रहते हैं। जिस हद तक संसार पूर्ण होता है, उनकी लीला भी पूर्ण होती है। बीते कल की लीला आगामी कल की लीला न रहेगी।

२. हमें विरोधी शक्तियों को अपनी शरारत करने का अवसर कभी न देना चाहिये—वे ज़रा-सी निश्चेतना का भी लाभ उठा लेती हैं।

३. सूर्य का प्रकाश 'अतिमानसिक प्रकाश' का प्रतीक है।
हम सूर्य के प्रकाश का, 'परम प्रभु' के प्रतीक का आवाहन करते हैं ताकि वे हमें 'दिव्य सत्य का प्रकाश' प्रदान करें।

४. वाद-विवाद प्रायः निष्फल और निष्प्रयोजन होते हैं।
अगर हर एक पूर्ण सच्चाई, ईमानदारी और सद्भाव से व्यक्तिगत प्रयास करे तो काम के लिए सबसे अच्छी परिस्थितियाँ प्राप्त हो जायेंगी।

५. धरती पर परिवर्तन धीरे-धीरे आते हैं।
चिन्ता न करो—भविष्य के लिए आशा बनाये रखो।

६. यह सच है कि हम कठिन समय में से गुज़र रहे हैं, लेकिन जो स्थिर बने रहेंगे वे उसमें से पहले की अपेक्षा बहुत अधिक मज़बूत होकर निकलेंगे।

७. निष्ठा सफलता का निश्चित आधार है।

८. हमें सतत अभीप्सा की स्थिति में रहना चाहिये, लेकिन जब हम अभीप्सा न कर सकें तो हम एक बालक की सरलता के साथ प्रार्थना करें। हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान् हमें हमेशा अधिकाधिक सिखायें, अधिकाधिक बोध दें, हमारे अज्ञान को छिन्न-भिन्न करें, हमारे मनों को प्रकाश दें।

९. हे माँ, तू मेरी बुद्धि का प्रकाश, मेरी अन्तरात्मा की शुद्धि, मेरे प्राण का स्थिर-शान्त बल और मेरे शरीर की सहनशक्ति है। मैं केवल तेरे ऊपर निर्भर हूँ और पूरी तरह तेरा होना चाहता हूँ। मार्ग की सभी

कठिनाइयों से मुझे पार लगा।

१०. कोशिश छोटी-सी चीज़ है, लेकिन वह भविष्य के लिए प्रतिज्ञा हो सकती है।

११. हमें उस सबसे बचने की सावधानी हमेशा रखनी चाहिये जो हमारे अन्दर दिखावे के भाव को प्रोत्साहित करता हो।

१२. यह जानना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि सभी दुर्घटनाएँ निश्चेतना का परिणाम होती हैं। फिर भी, बाहरी रूप से, उनके मुख्य कारणों में से एक है अनुशासनहीनता का भाव, अनुशासन के लिए एक प्रकार का तिरस्कार।

१३. हे प्रभो! सत्य के प्रति अपने प्रयास में हमें वास्तविक रूप से सच्चा और निष्कपट होना सिखा।

१४. सबसे अच्छे विद्यार्थी वे हैं जो जानना चाहते हैं, वे नहीं जो दिखावा करना चाहते हैं।

१५. सब कुछ निर्भर करता है तुम्हारे संकल्प और तुम्हारी सच्चाई पर।

१६. सफलता को लक्ष्य न बनाओ। हमारा लक्ष्य होना चाहिये पूर्णता।

१७. एक चीज़ के बारे में तुम निश्चित हो सकते हो—**तुम्हारा भविष्य तुम्हारे ही हाथों में है**। तुम वही व्यक्ति बनोगे जो **तुम बनना चाहते हो**। तुम्हारा आदर्श और तुम्हारी अभीप्सा जितने ऊँचे होंगे, तुम्हारी सिद्धि भी उतनी ही ऊँची होगी। लेकिन तुम्हें दृढ़ निश्चय रखना चाहिये और अपने जीवन के सच्चे लक्ष्य को कभी न भूलना चाहिये।

१८. तुम्हें डटे रहना चाहिये, हर क़ीमत पर डटे रहना चाहिये, भय के कम्पन के बिना, जागरूकता में कमी लाये बिना, जो लक्ष्य सिद्ध करना है उस पर और ऊपर से आने वाली सहायता पर—जो प्रेरणा और सहारा देती है—अटल श्रद्धा बनाये रखनी चाहिये।

१९. सब भावों से परे, हमारी सत्ता की नीरव और शान्त गहराइयों में एक प्रकाश सदा प्रज्वलित रहता है, यह अन्तरात्मा की चेतना का प्रकाश है। इस प्रकाश को खोजो, इस पर एकाग्र होओ, यह तुम्हारे अन्दर ही है।

२०. जीवन के दुःखों को वह न मान लो जो वे दीखते हैं। सच्ची बात यह है कि वे महत्तर प्राप्तियों की ओर मार्ग हैं।

२१. जब तक व्यक्ति अपने पुण्य पर अभिमान करता रहेगा, परम प्रभु उसे विनय की आवश्यकता सिखाने के लिए पाप-गर्त में गिराते रहेंगे।

२२. जीवन हमें इसलिए दिया गया है कि हम भगवान् को प्राप्त कर सकें और उनके साथ संयुक्त हो सकें।

२३. भगवान् में हमारा विश्वास बाह्य अवस्थाओं पर आधारित नहीं होना चाहिये।

भगवान् की बाँहों में विश्राम लेने से सब कष्ट दूर हो जाते हैं, कारण, ये बाँहें हमें आश्रय देने के लिए सदा प्रेम से खुली रहती हैं।

२४. सामान्य रूप से तुम्हारे अन्दर जो दोष होते हैं वे ही तुम्हें औरों के अन्दर बहुत चौंकाने वाले लगते हैं।

बाद में, तुम्हारी समझ में आ जाता है कि और लोग ऐसा दर्पण हैं जो तुम जो कुछ हो उसे ही प्रतिबिम्बित करते हैं।

२५. संकट और जोखिम हर अग्रगामी गति के भाग होते हैं। उनके बिना कभी कोई चीज़ हिलेगी भी नहीं; और साथ ही जो लोग प्रगति करना चाहते हैं उनके चरित्र को ढालने के लिए ये चीज़ें अनिवार्य हैं।

२६. यदि कोई विश्व में बना रहना चाहे तो उसे प्रगति के सिद्धान्त को अवश्य स्वीकार करना होगा, क्योंकि यह एक प्रगतिशील विश्व है।

२७. व्यक्तिगत प्रयास के बल पर ही मनुष्य प्रगति करता है।

२८. जगत् वह का वही नहीं रहता। इसमें सब कुछ बदलता रहता है। मनुष्य काल की आत्मा है, उसे सबसे ज़्यादा बदलना चाहिये।

२९. अहंकार-रहित बल एक ऐसा बल है जो स्वार्थ के लिए काम नहीं करता, वह केवल भगवान् का यन्त्र बन कर उनकी सेवा के लिए अस्तित्व रखता है।

३०. कोई भी चीज़ आरम्भ करने, कोई भी चीज़ करने की कोशिश करने से पहले, **सबसे पहले** इस विषय में निस्सन्दिग्ध हो जाओ कि तुम केवल उतने ही निष्कपट नहीं हो जितने कि तुम हो सकते हो बल्कि उससे भी अधिक बनने की इच्छा रखते हो, क्योंकि बस वही तुम्हारा संरक्षण है।

३१. अपने अन्दर उस सबका उपचार करो जो हमारी चेतना में भागवत उपस्थिति का विरोध करता है।

# गुरु-शिष्य सम्बन्ध

एक ही गुरु अनेक शिष्यों को स्वीकार कर सकते हैं पर सभी एक ही तरह से या एक ही गति से प्रगति नहीं करते। शिष्य गुरु से कैसे लाभ उठा सकते हैं इसका एक उदाहरण है एकलव्य की कथा में। महाभारत में कथा आती है कि शिकारियों के राजा का एक बेटा था एकलव्य। उसने सुना कि उस काल में द्रोणाचार्य धनुर्विद्या के सबसे बड़े ज्ञाता थे। वह शिष्य बनने के लिए उनके पास जा पहुँचा। द्रोणाचार्य ने इन्कार कर दिया। एकलव्य बहुत दुःखी हुआ, लेकिन उसने हिम्मत न हारी। वह घर जाने की जगह जंगल में जा पहुँचा और वहाँ द्रोणाचार्य की एक प्रतिमा बना कर उसके आगे बैठ गया और बोला, "लीजिये, आप मेरे धनुर्विद्या के गुरु हैं।" और इस तरह धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा।

एक दिन अर्जुन और द्रोणाचार्य के अन्य शिष्य उसी जंगल में जा पहुँचे। शिकारी कुत्तों में से एक भटक कर वहाँ जा पहुँचा जहाँ एकलव्य अपना अभ्यास कर रहा था। एक कुत्ते ने वहाँ भौंकना शुरू किया। एकलव्य ने उसके मुँह पर बाण मारे और उसका भौंकना बन्द हो गया। बाण कुछ इस तरह से मारे गये थे कि उन्होंने कुत्ते को कोई चोट नहीं पहुँचायी, गले के अन्दर कोई क्षति नहीं की, बस उसका भौंकना बन्द कर दिया। कुत्ता शिकारियों के पास लौट आया। अर्जुन इस आश्चर्यजनक घटना को देख कर बड़े विस्मित हो उठे क्योंकि वे भी ऐसा नहीं कर सकते थे।

अर्जुन उस धनुर्धारी की तलाश में निकले और एकलव्य को देख कर उसकी प्रशंसा की और वे उसके गुरु के बारे में पूछताछ करने लगे। उन्हें यह सुन कर बहुत खेद हुआ कि उसके गुरु द्रोणाचार्य थे, क्योंकि गुरु ने उसे वचन दे रखा था कि अर्जुन ही उनका सबसे अच्छा शिष्य होगा। अर्जुन ने घर लौट कर गुरु से हतोत्साह होकर शिकायत की। स्वयं द्रोणाचार्य आश्चर्य में पड़ गये क्योंकि उन्होंने तो एकलव्य या ऐसे किसी व्यक्ति को शिष्य के रूप में कभी स्वीकार ही नहीं किया था। वे अर्जुन के साथ हो लिये और जाँच करने के लिए एकलव्य के पास जा पहुँचे।

एकलव्य ने कहा, "जी हाँ, आपने तो मुझे शिष्य के रूप में नहीं स्वीकार किया परन्तु मैंने आपको अपना गुरु मान लिया और आपकी इस मूर्ति के द्वारा मैंने आपकी चेतना के साथ अपना नाता जोड़ लिया और इस तरह ऊपर से जाने बिना भी आपकी चेतना ही मेरा पथ-प्रदर्शन करती रही।" परन्तु अधिकतर बात इससे उलटी हुआ करती है। जब गुरु स्वीकार कर लेते हैं तो वे शिष्य की चेतना से अपना नाता जोड़ लेते हैं और उसके जाने बिना भी उसे मार्ग दिखाते हैं।

मैं इसके बारे में व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ और तुम्हें एक उदाहरण दूँगा। माताजी के आदेश से मैं एक भारतीय गुरु से प्रशिक्षण ले रहा था। एक दिन मैंने एक स्वप्न देखा और माँ के आगे उसका उल्लेख किया। उन्होंने कहा, "इस गुरु ने तुम्हें यह स्वप्न दिया है।" भारतीय योग में ऐसा होता है कि गुरु तुम्हें अपनी चेतना में ले सकते हैं और तब केवल वे ही विचार तुम्हारे अन्दर आ सकते हैं जिन्हें वे आने देना चाहें। वे उनमें छान-बीन कर सकते हैं, जिन विचारों को अलग करना चाहें उन्हें अलग कर सकते हैं। लेकिन शिष्य के लिए भी यह सम्भव है कि वह अपनी चेतना गुरु की चेतना के साथ जोड़ ले। तो जब गुरु शिष्य की चेतना के साथ नाता जोड़ता है तो एक अच्छा शिष्य अपने गुरु की चेतना के साथ सम्पर्क पाने की कोशिश करता है और चौबीस घण्टे उस सम्पर्क के साथ रहने की कोशिश करता है क्योंकि तभी उच्चतर चेतना और शक्ति भगवान् से गुरु के द्वारा शिष्य तक प्रवाहित होंगी। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि इस तरह ध्यान करो कि तुम अपने-आपको गुरु के हृदय के अन्दर अनुभव करो और अपने हृदय में गुरु की उपस्थिति का ध्यान करो।

गुरु के साथ जुड़ने का सबसे अच्छा तरीक़ा है दोहरा ध्यान। ध्यान करो, अपने गुरु को याद करो क्योंकि गुरु मन से ऊपर के स्तरों को व्यक्तिगत रूप से अनुभव कर चुके हैं। अतः उनके साथ अपने-आपको जोड़ कर तुम इन स्तरों के साथ भी नाता जोड़ लेते हो। यह दोहरा ध्यान तुमको बाहर से सुरक्षित और अन्दर से खुला रखता है। तुम जो सबसे अच्छे ध्यान कर सकते हो, यह उनमें से एक है : गुरु की चेतना के साथ एक होकर, उनके द्वारा दिये हुए मन्त्र की सहायता से भगवान् पर ध्यान करना। शिष्य के लिए गुरु से लाभ उठाने का यह सबसे अच्छा तरीक़ा है।

गुरु के प्रति शिष्य का भाव भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। योगों ने गुरु की इस तरह प्रशंसा की है कि शायद वह हमें कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण लगे जिसमें कहा जाता है कि '*गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः*।'—गुरु ही ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर हैं। तुम इसके दो तरह से अर्थ कर सकते हो। एक तो यह कि तुम्हारे गुरु इन महान् देवों के प्रतिनिधि हैं, दूसरा यह कि तुम अपने गुरु के अन्दर इन देवों के दर्शन करो तो वे कम-से-कम तुम्हारे लिए इस तरह से अभिव्यक्त होंगे। हो सकता है कि उनके अन्य बीसियों शिष्य हों परन्तु उन सबके लिए वे इन रूपों में प्रकट न होंगे, लेकिन तुम्हारे लिए तो होंगे ही।

तो यह जानना बहुत ज़रूरी है कि गुरु-शिष्य सम्बन्ध कैसा है! यह केवल गुरु पर नहीं, शिष्य पर भी निर्भर करता है। गुरु के अन्दर भले कुछ त्रुटियाँ क्यों न हों परन्तु अमुक प्रकार का शिष्य उनसे लाभ उठा सकता और प्रगति कर सकता है और गुरु की भी सहायता कर सकता है। मैं एक महिला को जानता हूँ जो बहुत विकसित थी और उसका किसी उच्चतर सत्ता के साथ भी सम्बन्ध था। एक बार उस उच्चतर सत्ता ने उसे गुरु का कार्य इस तरह समझाया, "तुम्हारे गुरु एक कड़ी की तरह काम करते हैं। एक तालाब ऊपर है और एक और तालाब नीचे है। तुम्हारे गुरु ऐसे नल हैं जिसमें से होकर पानी ऊपर से नीचे के तालाब में आता है या यूँ कहें कि भगवान् से तुम्हारे पास आता है।" तो तुम्हें यह मालूम होना चाहिये कि तुम्हारे गुरु वे चुने हुए यन्त्र हैं जिनमें से होकर आध्यात्मिक लाभ तुम तक आता है। ज़रूरी बात यह है कि इस जीवन में वे तुम्हारी सहायता करते हैं, यह सम्बन्ध इस तरह शुरू होता है।

शिष्य को अपने गुरु के साथ सम्बन्ध इस तरह जोड़ना चाहिये कि उससे उसे पूरा-पूरा लाभ पहुँचे। इसके लिए शिष्य को अपने गुरु के साथ बिलकुल खुला हुआ होना चाहिये। गुरु से कुछ भी नहीं छिपाना चाहिये। जब हम सच्चे गुरु के आगे अपनी बात खोल कर रख देते हैं तो वे हमारी सब त्रुटियाँ अपने अन्दर ले लेते हैं। जब हम अपनी कठिनाइयाँ अपने गुरु के सामने रख देते हैं तो यदि गुरु भगवान् के साथ एकात्म हैं तो हमारी सब कठिनाइयाँ उनके द्वारा भगवान् तक पहुँच जाती हैं। यह बिलकुल सच है। भगवान् के साथ सम्पर्क के कारण हमारी कठिनाइयों के समाधान

भी भगवान् के द्वारा आ जाते हैं। हमें केवल गुरु का भौतिक शरीर ही नहीं, उनके पीछे की शक्ति को भी देख सकना चाहिये। हम इसके जितने अभ्यस्त होते जायेंगे उतना ही अधिक उनका और उनके द्वारा भगवान् का मार्ग-दर्शन पा सकेंगे।

तुम्हें गुरु की चेतना के साथ सतत और सम्पूर्ण सम्पर्क रखना चाहिये। यह मन, प्राण और शरीर के साथ होना चाहिये। जैसा कि मैंने कहा, गुरु के साथ भौतिक सम्पर्क पत्रों द्वारा, शब्दों द्वारा, मन्त्र द्वारा या शारीरिक कर्म द्वारा सहायता करता है। तुम जो कुछ चाहते हो गुरु में भगवान् का वही पक्ष देखने की कोशिश करो और उसके प्रति खुलो। तुम संगीत, चित्रकारी, साहित्यिक योग्यता, श्रद्धा, साहस कुछ भी चाह सकते हो, तुम सब कुछ पा सकते हो क्योंकि सभी चीज़ें भगवान् में हैं। हमारी एकाग्रता द्वारा सभी क्षमताएँ जाग सकती हैं, अपनी अभीप्सा द्वारा हम उन्हें नीचे बुला सकते हैं और अपनी ग्रहणशीलता द्वारा हम उन्हें पा सकते हैं, अपने समर्पण द्वारा हम उन्हें आत्मसात् कर सकते हैं। यह प्रक्रिया इस तरह काम करती है।

अभी तक मैंने ऐसी बातों के बारे में बात की है जो **करनी चाहियें**। अब उन पर आता हूँ जो **नहीं करनी चाहियें**। अगर तुम तेज़ी से प्रगति करना चाहते हो तो अपने-आप मार्ग का चुनाव न करो, गुरु को चुनने दो। गुरु में तुम्हारे भूत, भविष्य और वर्तमान को देखने की दृष्टि है, वे जानते हैं कि तुमको लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए किस रास्ते से जाना चाहिये। तुमको ढलवाँ रास्ते से जाना चाहिये जो सचमुच तेज़ी से ले जाने वाला लेकिन कठिन पथ है या फिर कम ढाल वाले पथ से, जो अधिक आसान लेकिन लम्बा रास्ता है। इन सब बातों का फ़ैसला अपने गुरु के हाथों में छोड़ दो परन्तु अपनी कठिनाई उनके सामने रखते हुए संकोच न करो, अगर तुम्हारे अन्दर किसी चीज़ के लिए अभीप्सा या ललक पैदा होती है तो उनसे कह दो।

एक बार मैंने माँ से कहा, "मेरे अन्दर आपके पास जिस किसी समय आने की प्रबल इच्छा होती है और मुझे अपने ऊपर नियन्त्रण रखना पड़ता है क्योंकि वह ऐसा समय नहीं होता जब मैं आपके पास आ सकूँ।" माँ ने हँस कर कहा, "जब तुम्हारा जी चाहे आ जाया करो, अपने-आपको रोको मत क्योंकि इससे एक दीवार बन जाती है। अगर मैं ख़ाली होऊँगी

तो तुमसे पूछ लूँगी कि तुम्हें क्या चाहिये और तुम्हें उत्तर दे दूँगी और अगर मैं व्यस्त होऊँगी तो तुम्हें एक फूल दे दूँगी, लेकिन आओ ज़रूर।" तो सबसे ज़रूरी चीज़ है, अपनी समस्या के बारे में गुरु से बिलकुल खुला रहना। उनकी दृष्टि में एक अच्छा शिष्य बनने की कोशिश न करो, सचमुच जो हो वही रहने की कोशिश करो। तब तुम देखोगे कि उनसे अधिक-से-अधिक लाभ कैसे मिलता है।

तुम्हारी समस्या चाहे जैसी क्यों न हो—भौतिक हो या आध्यात्मिक, उसका हल हो जायेगा। मैं विवेकानन्द का उदाहरण देता हूँ, उनकी कोई भौतिक समस्या थी। रामकृष्ण ने उन्हें माँ काली के पास भेज दिया। उन्होंने विवेकानन्द से यह न कहा, "नहीं, भौतिक चीज़ों की माँग न करो। आध्यात्मिकता ही सब कुछ है" बल्कि रामकृष्ण ने उनसे कहा कि माँ काली के पास जाकर जो चाहो माँग लो।

ऐसे लोग हैं जिनके सामने और तरह की समस्याएँ हैं, जैसे राजनीतिक समस्याएँ। उन्हें इनको गुरु के आगे रख देना चाहिये और गुरु को ही ठीक करने देना चाहिये कि क्या करें। गुरु को पता होगा कि हमें कौन-सी राह दिखायें और वे हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचा देंगे। संक्षेप में, यही तरीक़ा है जिससे हम जान सकेंगे कि गुरु के सम्पर्क से कैसे लाभ उठायें।

(क्रमशः)

—नवजातजी

# आया कहाँ से यह सब?

अब आपको क्या बतलाऊँ? मैं "पिदरम सुलतान बूद" (मेरे बाप राजा थे) की डींग नहीं मार रहा, पर बात कुछ ऐसी ही है। सारे गाँव में हमारा ही मकान पक्का था और उसके चारों ओर काफ़ी बड़ा अहाता था क्योंकि उन दिनों "सबइ भूमि गोपाल की" मानी जाती थी, इतने क़ायदे-क़ानून न थे। जितनी ज़मीन जिसने घेर ली वह उसकी। तो मेरे बाप-दादों ने भी काफ़ी सारी ज़मीन घेर ली थी।

हम कई भाई-बहन थे। एक बार सबके ऊपर सनक सवार हुई, हम खेती करेंगे। हर एक का खेत या बाग़ अलग-अलग होना चाहिये और हर एक अपने खेत की देख-भाल ख़ुद करे। फ़ैसला होते देर न लगी। ज़मीन

की कमी तो थी नहीं, माँ ने झट पटवारी बन कर जमाबन्दी कर दी और हर एक के नाम पट्टा लिख दिया।

झम्मन ने ठीक किया कि वह बूट की खेती करेगा। पहले पत्तों का शाक बनायेगा, फिर बूट चबायेगा, फिर होले भून कर खायेगा और अन्त में भुने चने और बेसन के लड्डुओं की बारी आयेगी।

कुमकुम ने आम की गुठलियाँ बो दीं, लेकिन आम लगने के सपने पूरे होने की तो बात ही दूर, उसने पत्तों के आते ही पपीये बजाने शुरू किये।

हममें से किसी ने पालक की खेती शुरू की, किसी ने मूँगफलियाँ मिट्टी के नीचे दबायीं। मैं सबसे छोटा था और कुछ निश्चय न कर पा रहा था कि क्या बोऊँ। कभी इच्छा होती थी घड़ी बो दूँ, बस घर में घड़ियाँ-ही-घड़ियाँ हो जायेंगी! तब सबको घड़ियाँ दिखा-दिखा कर चिढ़ा सकूँगा। कभी सोचता, मैं फ़ाउंटेन पेन लगाऊँगा। घर में मुझे छोड़ सभी के पास एक-एक फ़ाउंटेन पेन है, जब मैं माँगता हूँ तो कह दिया जाता है, "तुम छोटे हो, अभी नहीं।" तो अगर मेरे पास फ़ाउंटेन पेन का पेड़ हो जाये तो सभी मेरे आगे हाथ पसारेंगे।

इसी तरह मैं बार-बार तरह-तरह की चीज़ें बोने की बात सोचता था, पूरे उत्साह के साथ माँ को बतलाता था और वे ठण्डा पानी डाल देती थीं। आख़िर मैंने खीझ कर माँ से कहा, "अच्छा चलो, तुम ही मेरे लिए ठीक कर दो।"

माँ ने पहले तो मेरे खेत की ज़मीन पोली की और फिर झपट कर अन्दर से कुछ बीज उठा लायीं। छिः, कैसे थे बीज, काले-काले, सिकुड़े-बटुरे, मानों बहुत दिनों से उपवास कर रहे हों। बहुत बुद्धि लगा कर मैंने ठीक किया कि हो न हो, यह काली मिर्च का बीज होगा। चलो, मेरे यहाँ काली मिर्च पैदा होगी, तब मैं सबके नाकों चने नहीं, नाकों मिर्च चबवाऊँगा!

कुछ दिनों बाद, किसी के खेत में गुलदाऊदी के पौधे आये, किसी के यहाँ होले खड़े हुए, मेरे यहाँ लम्बे-लम्बे सींकिया पहलवानों का जमघट हुआ। देखने में कुछ मज़ा नहीं आया। लेकिन माँ बहुत ख़ुश थीं और उनकी ख़ुशी का चेप मुझे भी लग जाता था।

ख़ैर, मेरे पेड़ कुछ बड़े हुए। एक दिन क्या हुआ जानते हैं? मैं एक पेड़ के सहारे अपने-आपको तोल रहा था और वह चट सरकण्डे की तरह

टूट गया। बड़ा बुरा लगा मुझे। मेरी आँखें भर आयीं। माँ ने किसी तरह समझा-बुझा कर शान्त किया। अब मैं ज़्यादा सावधान हो गया।

मेरे पेड़ों पर बड़े-बड़े लम्बूतरे फल दीखने लगे, गहरे हरे रंग के बड़े-बड़े फल। अब मेरे अन्दर रस जागा। ऐसा फल तो कभी न देखा था। मैंने सोचा, यह ख़रबूज़े की कोई जाति होगी। अचानक याद हो आयी कि पड़ोसिन को माँ ने इसका नाम "एरण्ड ख़रबूज़ा" ही तो बतलाया था।

अब मैं सवेरे, दोपहर, शाम जा-जा कर फलों को देखता, मेरी उत्सुकता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही थी। दिन में दस बार माँ से पूछता, "इसे कब उतारोगी?" और वे हर बार मेरे उत्साह पर ठण्डा पानी डाल देती थीं, कहती थीं, "अभी यह कच्चा है, इस पर मुँह मारोगे तो मुँह में घाव हो जायेंगे।"

हरा रंग पीला पड़ने लगा, नींबू के जैसा पीला नहीं, हल्दी-जैसा पीला जिसमें थोड़ा-सा चूना मिला दिया गया हो। लेकिन दूध का जला छाछ फूँक-फूँक कर पीता है। मैं कभी पेड़ को छूता न था, डर था कि कहीं गिर न जाये। मेरी सारी सम्पत्ति नष्ट न हो जाये।

आख़िर वह दिन आ ही गया। माँ ने पेड़ पर से पका हुआ फल उतरवाया। पता नहीं मेरा शरीर ज़्यादा उछल रहा था या मेरा मन। माँ ने थाली, कटोरे, चम्मच, चाकू न जाने क्या-क्या चीज़ें इकट्ठी कीं! उफ़, उनके सरंजाम का अन्त ही न आता था। जब वे आकर अपनी चौकी पर बैठीं तो मैं भी उकड़ूँ होकर उनके सामने बैठ गया। मेरे सारे शरीर में आँखें थीं और सब-की-सब उस पपीते पर लगी थीं। माँ ने आज ही मुझे यह नाम बतलाया था।

हाँ, तो पपीता कटा। अन्दर से क्या सुन्दर रंग के दो भाग हो गये। मैं उछल पड़ा। यह तो केसरिया रंग की गरी है, लेकिन कितनी मुलायम! हमारे घर में यह नियम था कि ठाकुरजी का भोग लगाने से पहले किसी चीज़ के खाने के बारे में नहीं सोचा जाता। सुधारते समय माँ के हाथ से ज़रा-सा टुकड़ा उछल कर मेरे हाथ पर आ गया। मैंने माँ की आँख बचा कर उसे ओठ से उठा लिया। लाल बुझक्कड़ होते तो ज़रूर यही कहते कि केसरिया हलवे की गरी बना कर भगवान् ने हरी पेटी में बन्द कर दी है।

और उसके बीज—क्या तरलता थी उनमें, क्या चमक थी उनमें। मेरी

माँ जब बहुत लाड़-प्यार के साथ मेरी ओर देखती हैं तो कभी-कभी उनकी आँखों में ऐसी ही चमक होती है, ऐसी ही तरल मधुरता होती है।

और यह सब आया कहाँ से? उस सूखे, सिकुड़े-बटुरे काली मिर्च के बीज में से। सचमुच माँ ने कमाल कर दिया!

'पुरोधा', मई २००३ से — स्व. रवीन्द्रजी

# तुझे हर मुश्किल से पार लगा दूँगा

कहानी नहीं, उन सच्ची घटनाओं में से एक है यह जिनमें जात-पाँत के होते हुए भी इन्सानों में सच्ची इन्सानियत का जज़्बा उझक-उझक कर झलकता है और होठों पर बरबस मुस्कान और मोहब्बत की लकीरें खींच जाता है।

मैं एक किसान का लड़का हूँ, मगर मैंने ख़ुद कभी हल नहीं चलाया। मेरे पिताजी संस्कृत के बड़े पण्डित थे, साथ ही खेती का काम भी अच्छी तरह से जानते थे। हमारे घर के पास एक मुसलमान रहते थे। नाम था इब्राहीम। वे जात के जुलाहे थे, पर खेती से अपना गुज़ारा करते थे। हमारे और उनके खेत पास-पास थे। इसकी वजह से उनके साथ हमारा ख़ासा अच्छा मेल-जोल हो गया था। मेरे पिताजी उनको अपने भाई की तरह मानते थे। हम सब उन्हें इब्राहीम चाचा कह कर पुकारते थे।

इब्राहीम चाचा हमारे साथ अपने बच्चों का-सा बरताव करते थे। वे एक नेक मुसलमान थे, और हमारी धार्मिक बातों का हमसे भी ज़्यादा ख़याल रखते थे। वे मानते थे कि हर एक आदमी को अपने-अपने धर्म पर चलने का पूरा हक है।

अक़्सर फसल के दिनों में मेरे पिता और इब्राहीम चाचा बारी-बारी हमारे खेतों की रखवाली करते, और इस तरह पैसा और वक़्त दोनों बचा लिया करते थे।

जब कभी हम मुँह-अँधेरे अपने खेत पर जाते, तो दूर से ही चिल्ला कर पुकारते—"इब्राहीम चाचा, सो रहे हो या जाग रहे हो?" वे खेत में से जवाब देते—"आओ बेटा, आओ! आज मैंने बहुत अच्छी-अच्छी ककड़ियाँ

और मीठे-मीठे ख़रबूज़े तोड़े हैं। आओ, ये ले जाओ!" और वे हमारी झोलियाँ भर देते। मेरे पिताजी भी अपने खेत के अच्छे-से-अच्छे ख़रबूज़े तुड़वा कर चाचा के घर भिजवाते।

हम कभी इब्राहीम चाचा के हाथ का छुआ न खाते, न चाचा हमें कभी भूले-चूके भी खाने देते। फिर भी हममें से किसी को भी यह ख़याल तक न आता कि हम हिन्दू हैं और वे मुसलमान!

हम चार भाई थे। मैं सबसे छोटा था, इसलिए इब्राहीम चाचा मुझे सबसे ज़्यादा प्यार करते थे। आम के मौसम में टपके का सबसे पहला आम इब्राहीम चाचा ख़ुद उतारते, बहुत हिफ़ाज़त के साथ उसे कपड़े में लपेट कर लाते, और चुपचाप मेरी जेब में डाल देते। मैं उसे सूँघता और उसकी मीठी ख़ुशबू से मस्त होकर मारे ख़ुशी से बोल उठता—"चाचा, आप तो इस आम से भी ज़्यादा मीठे हैं!"

चाचा को गुड़ बहुत पसन्द था, और उनकी बोली भी बहुत मीठी थी। इससे हम सब उन्हें हँसी में 'मीठे चाचा' कहा करते। यह सुन वे चिढ़ते और हमें पकड़ने के लिए लपकते। हम भाग जाते और कभी उनके हाथ न आते।

अक़्सर इब्राहीम चाचा अपनी रकाबी में रोटी रख कर हमारे घर आते, और मुझे आवाज़ देकर कहते—"बेटा, ज़रा देखो तो, तुम्हारे घर कोई साग-तरकारी बनी है?" मैं दौड़ा-दौड़ा माँ के पास जाता और तरकारी, अचार और दूसरी अच्छी-अच्छी खाने की चीज़ें थाली में ले आता और उनकी रकाबी में रख देता। चाचा वहीं बैठ कर बड़े मज़े से खाते, और उन्हें परोसी हुई चीज़ें ख़तम भी न हो पातीं कि मैं और ले आता और उनके मना करने पर भी रकाबी में परोस देता। मेरे इस बरताव से अक़्सर उनकी आँखों में मोहब्बत के आँसू छलछला आते। वे बहुत चाहते होंगे कि मुझे अपनी छाती से लगा लें, मगर कभी लगाते न थे। शायद इसलिए कि मैं पण्डित का लड़का था और वे मुसलमान थे।

इस तरह मेल-मोहब्बत में कई साल बीत गये, और दोनों कुनबों के लोगों में आपसी मोहब्बत बढ़ती गयी। इस बीच मेरे पिताजी गुज़र गये। अब तो इब्राहीम चाचा हमें पहले से भी ज़्यादा प्यार करने लगे। मेरे बड़े भाई हमेशा उनकी सलाह से काम करते, और चाचा भी उन्हें सच्ची सलाह देते।

एक बार का क़िस्सा है। हिन्दुओं की कुछ गायें और भैंसे चरवाहों की लापरवाही से मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में घुस गयीं और बहुत-से पेड़-पौधे चर गयीं। मुसलमानों को यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। गाँव के मुसलमानों ने चरवाहों की ख़ासी मरम्मत की और जानवरों को कांजीहौस में ले जाने लगे। चरवाहों ने यह ख़बर गाँव में पहुँचायी। जानवरों के मालिक अपनी लाठियाँ सँभाल कर मौक़ए वारदात पर पहुँच गये। बात बिजली की तरह सारे गाँव में फैल गयी, और आसपास के तमाम हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे से लड़ने के लिए मैदान में जमा होने लगे। घण्टों तू-तू, मैं-मैं होती रही और लाठियाँ चलने की पूरी तैयारी हो गयी। समझौते की सब कोशिशें बेकार साबित हुईं। मुसलमानों ने कहा—"चरवाहों के लड़के हमेशा ऐसा करते हैं।" और उन्होंने लाठी, पत्थर, ईंट वगैरह जो भी चीज़ें मिलीं, जमा कर लीं। वे लड़ने और मरने-मारने पर तुल गये।

इब्राहीम चाचा भी अपने बेटों और पोतों के साथ वहाँ मौजूद थे। उन्होंने झगड़ा मिटाने की बहुत कोशिश की, मगर किसी ने उनकी न सुनी। उन मवेशियों में हमारे मवेशी भी थे इसलिए मेरे भाई भी वहाँ पहुँच गये थे। औरतों और बच्चों को छोड़ कर सारा गाँव वहाँ जमा हो गया था। औरतें बेचारी हैरान थीं और सोचती थीं—"मरदों का क्या होगा?"

मैं मदरसे से आया तो देखा, घर के दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द थीं। मुझे भी झगड़े का पता चल गया। मैंने किताबें एक कोने में पटकीं। माँ मना करती रहीं, मगर मैं मैदान की तरफ़ भाग लिया, और तेज़ी से उस जगह पहुँच गया जहाँ लोगों की भीड़ जमा थी। देखा, तो मालूम हुआ कि इब्राहीम चाचा अपने बेटों और पोतों के साथ सामने वाले दल में सबसे आगे खड़े थे। मैंने बड़ी मासूमियत से उनसे पूछा—"इब्राहीम चाचा, आप किस तरफ़ हैं?"

इब्राहीम चाचा ने फ़ौरन अपने एक बेटे के हाथ से लाठी ली, और वे मेरे पास आ खड़े हुए। उन्होंने अपने बेटों से कहा—"इसका पिता आज ज़िन्दा नहीं है, इसलिए मैं इसके साथ रह कर ही लड़ूँगा। तुम उस तरफ़ रहो।"

इब्राहीम चाचा को दूसरी तरफ़ जाते देख कर सब लोग दंग रह गये। कुछ देर तक वहाँ सन्नाटा छाया रहा। सब शर्मिन्दा हो गये, और बिना कुछ बोले अपने-अपने घरों की ओर चल पड़े। इब्राहीम चाचा के पीछे-पीछे हम

सब भी अपने-अपने घर लौट आये।

उस दिन तो मैं समझ ही न पाया कि इतना बड़ा झगड़ा एकदम कैसे ठण्डा पड़ गया। लेकिन आज मैं इस चीज़ को अच्छी तरह समझता हूँ, क्योंकि आज मैं इन्सानियत से परिचित हो गया हूँ।

इब्राहीम चाचा अब इस दुनिया में नहीं रहे। लेकिन मैं उन्हें कभी न भूलूँगा। मैं उनकी क़ब्र को अच्छी तरह पहचानता हूँ। उसे देख-देख कर मैंने कई बार आँसू बहाये हैं। जब कभी क़ब्रिस्तान की तरफ़ से निकलता हूँ, तो उनकी क़ब्र देख कर बच्चों की तरह बरबस यह पूछ बैठता हूँ—"इब्राहीम चाचा! सोते हो या जागते हो?" और मुझे अपने प्यारे इब्राहीम चाचा की मानों सदियों से सुनी आ रही वही भीनी-भीनी ख़ुशबू लिये आवाज़ सुनायी देती है—"बेटा, तेरा इब्राहीम चाचा दुनिया की नज़रों में भले सो चुका हो, लेकिन तेरी हर पुकार पर हमेशा की तरह दौड़ कर, तुझे अपनी बाँहों में भर, हर मुश्किल के समन्दर से पार लगा देगा।"

'अग्निशिखा', मार्च २०११ से —वन्दना

# वैदिक संस्कृति की उदारता

स्वामी रामतीर्थ ने १९०३ से १९०६ तक अपने चमत्कारी व्यक्तित्व से भारत, जापान और अमरीका को चमत्कृत कर दिया था। लाहौर के शासकीय महाविद्यालय के गणित के प्राध्यापक के स्थान को तिलाञ्जलि देकर वे ३७ वर्ष की उम्र में प्राचीन भारत की संस्कृति और दर्शनों की व्याख्या करने के लिए विदेश चले गये थे। जापान के लिए वे वेदान्त और बौद्ध धर्म के सच्चे उपदेशक थे, तो प्रशान्त महासागर से अतलान्तक सागर तक फैले अमरीका के लिए वे पूर्वी दार्शनिक विचारों, करुणा और स्नेह के प्रतीक थे।

ऐसे महान् विचारक रामतीर्थ जब बी. ए. की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, तब उनके पास परीक्षा-शुल्क के लिए पूरे रुपये नहीं थे। बहुत कोशिश करने पर भी पाँच रुपये की कमी रह गयी। रामतीर्थ जब उदास-मुँह चन्दू हलवाई की दूकान के सामने से निकले, तब चन्दू हलवाई ने उन्हें बुलाया

और उदासी का कारण पूछा।

रामतीर्थ ने बतलाया कि उनके पास परीक्षा की फ़ीस के लिए पाँच रुपये कम हैं। हलवाई ने उसी समय पाँच रुपये दे दिये। अपनी अद्वितीय प्रतिभा और गणित में शत-प्रतिशत अंक पाकर रामतीर्थ गणित के प्रोफ़ेसर बन गये और वे प्रतिमाह पाँच रुपये चन्दू हलवाई को भेजने लगे।

एक दिन प्रोफ़ेसर रामतीर्थ चन्दू हलवाई की दूकान के सामने से निकले। हलवाई ने बड़ी विनम्रता से कहा—"अब आप दूध पीने नहीं आते। आपके द्वारा मनीऑर्डर से भेजे पैंतीस रुपये मेरे पास जमा हो गये हैं। प्रतिमास आपके पाँच रुपए का मनीऑर्डर आ रहा है।"

रामतीर्थ ने उत्तर दिया—"यह सब तो आपके उन पाँच रुपयों के बदले में है। वे मुझे मौक़े पर न मिलते तो मैं इस स्थिति में कभी नहीं पहुँचता।"

सम्भवतः इसी को वैदिक संस्कृति की सच्ची उदारता कहा जा सकता है।

प्रस्तुतिः नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

**अग्निशिखा**

**श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका**

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

**सम्पादिका : वन्दना**

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

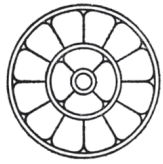

जिस समय हर चीज़ बुरी से अधिक बुरी अवस्था की ओर जाती हुई प्रतीत होती है, ठीक उसी समय हमें अपनी महती श्रद्धा का परिचय देना चाहिये और यह जानना चाहिये कि भगवत्कृपा कभी हमारा साथ नहीं छोड़ेगी।

*

संसार अपने आध्यात्मिक जीवन की रक्षा करने के लिए युद्ध कर रहा है जिसे विरोधी और आसुरिक शक्तियों के आक्रमण ने संकट में डाल रखा है।

हे प्रभो! हम यह अभीप्सा करते हैं कि हम तेरे वीर योद्धा बनें ताकि तेरी महिमा इस पृथ्वी पर अभिव्यक्त हो।

श्रीमातृवाणी, खण्ड १५, पृ. १८४, १८६ — श्रीमाँ

*शुभ कामनाओं सहित*

**श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,**
**जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)**
www.aurosocietyrajasthan.org

## Statement About Ownership And Other Particulars Concerning Agnishikha
## Form IV

| | |
|---|---|
| (1) *Place of Publication*: | Sri Aurobindo Ashram<br>Puducherry - 605002 |
| (2) *Periodicity of its publication:* | Monthly |
| (3) *Printer's Name:*<br>*Nationality :*<br>*Address:* | Swadhin Chatterjee<br>Indian<br>Sri Aurobindo Ashram Press,<br>Puducherry - 605002 |
| (4) *Publisher's Name:*<br>*Nationality:*<br>*Address:* | Pradeep Narang,<br>Indian<br>Sri Aurobindo Society,<br>11, Saint Martin Street,<br>Puducherry - 605001 |
| (5) *Editor's Name:*<br>*Nationality :*<br>*Address :* | Vandana<br>Indian<br>Sri Aurobindo Ashram<br>Puducherry - 605002 |
| (6) *Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital:* | Sri Aurobindo Society,<br>11, Saint Martin Street,<br>Puducherry - 605001. |

I, Pradeep Narang, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

1st March 2022

Sd/- (Pradeep Narang)
Chairman

Date of Publication: 1st March 2022
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70

मुखपृष्ठ पुष्प (**गुलमोहर**)

**सिद्धि**

हमारे प्रयासों का लक्ष्य

*(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)*

वानस्पतिक नामः Delonix regia